



# मजदूर बिगुल

बढ़ता हुआ प्रदूषण और घुटती हुई आबादी

16

अयोध्या फ़ैसला : मेहनतकशों का नज़रिया क्या हो?

9

कहानी सरकार का समर्थक

15

## देशी-विदेशी बड़ी पूँजी का बेरोकटोक राज!

### इसी संधी एजेण्डा को पूरा करने में जुटी मोदी सरकार पूँजी की नंगी गुलामी ही उनके "हिन्दू राष्ट्र" का आधार होगा!

देश के आर्थिक हालात लगातार बिगड़ते जा रहे हैं। जीडीपी की वृद्धि दर धीमी पड़ रही है, औद्योगिक उत्पादन में गिरावट जारी है, खेती का संकट गम्भीर होता जा रहा है, संकट और घोटालों से वित्तीय संस्थाएँ चरमरा रही हैं, बेरोज़गारी विकराल रूप में आ चुकी है, देश की एक बड़ी आबादी खाने-पीने की बुनियादी ज़रूरतों भी पूरी नहीं कर पा रही है। कुपोषण भयंकर स्तर पर है (वैश्विक भूख सूचकांक के अनुसार भारत का हर दूसरा बच्चा कुपोषित है), देश की 50 प्रतिशत स्त्रियाँ खून की कमी से पीड़ित हैं, ग़रीब किसान, मजदूर और युवा आत्महत्याएँ कर रहे हैं और आम लोगों के लिए बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं

और स्कूल-कॉलेजों की हालत दयनीय बनी हुई है—और आने वाले दिनों में इससे उबरने के कोई आसार दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहे हैं! क्योंकि मोदी सरकार के कारनामे अर्थव्यवस्था को और भी तेज़ी से ढलान पर लुढ़काने और मेहनतकशों के सिर पर तकलीफ़ों का और भारी पहाड़ लादने का काम कर रहे हैं।

हाल में आये एक सर्वेक्षण ने बताया कि पिछले 6 वर्षों में देश के कुल रोज़गार में 90 लाख की कमी आ गयी! पहले आबादी बढ़ने की दर के अनुसार रोज़गार पैदा होने की दर नहीं बढ़ती थी मगर कुछ-न-कुछ रोज़गार बढ़ता रहता था। मगर आज़ादी के

#### सम्पादक मण्डल

बाद से पहली बार ऐसा हुआ है कि कुल रोज़गार कम हो गया हो, यानी जितने लोगों को पहले से काम मिला हुआ था, उनकी संख्या बढ़ने के बजाय और कम हो गयी। 2011-12 और 2017-18 के बीच रोज़गार में लगे लोगों में 90 लाख की कमी आयी। अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के सतत रोज़गार केन्द्र की ओर से किये गये एक व्यापक अध्ययन में सरकारी दावों को झुठलाने वाला यह तथ्य सामने आया है। मोदी सरकार ने अपने पिछले कार्यकाल में बेरोज़गारी के जिन आँकड़ों को झूठा घोषित कर दिया था, पिछले अगस्त में

उसने पिछले दरवाजे से उस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। यह रिपोर्ट बताती है कि बेरोज़गारी की हालत पिछले 45 वर्षों में सबसे बुरी है।

अब एक बार फिर मोदी सरकार मेहनतकश जनता की बदहाली की हालत बताने वाली एक रिपोर्ट को दबाने में लग गयी है! खुद इस सरकार के राष्ट्रीय सांख्यिकीय विभाग द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार पिछले 40 सालों में पहली बार ऐसा हुआ है कि भारत में उपभोक्ता खर्च में गिरावट आयी है। जुलाई 2017 से जून 2018 के बीच किये गये व्यय सर्वेक्षण के नतीजे बताते हैं कि ग्रामीण इलाकों में लोगों ने चीनी, नमक, मसाले

और खाद्य तेल जैसी बुनियादी ज़रूरत की चीज़ों पर भी पहले से कम खर्च किया, जिससे गाँवों में उपभोक्ता खर्च में 8.8 प्रतिशत की कमी आयी। जहाँ 2011-2012 में देहात में एक औसत व्यक्ति 1217 रुपये खर्च करता था, वहीं 2017-18 में वही व्यक्ति केवल 1110 रुपये खर्च करने की स्थिति में था। इसी दौरान, शहरी क्षेत्रों में मासिक प्रति व्यक्ति खर्च 2212 से थोड़ा बढ़कर 2256 हो गया, हालाँकि इसका एक कारण ऊपरी तबकों द्वारा किया जाने वाली भारी खर्च भी है, क्योंकि शहरी ग़रीबों में भी बेरोज़गारी पहले से ज़्यादा बढ़ गयी है। कुल मिलाकर, देश में प्रति (पेज 8 पर जारी)

## बेरोज़गारी की भयावह स्थिति : पहली बार देश में कुल रोज़गार में भारी कमी!

### रोज़गार और आमदनी घटने से ग़रीब मेहनतकश आबादी खाने-पीने की बुनियादी चीज़ें ख़रीदने में भी अक्षम

बेरोज़गारी को लेकर मोदी सरकार के झूठों का बार-बार पर्दाफ़ाश हो रहा है। अपने पिछले कार्यकाल में मोदी सरकार ने बेरोज़गारी के जिन आँकड़ों को झूठा साबित करने में पूरी ताक़त लगा दी थी, उसी रिपोर्ट को पिछले अगस्त में उसने पिछले दरवाजे से स्वीकार कर लिया। सरकारी संस्था नमूना सर्वेक्षण की यह रिपोर्ट बताती है कि बेरोज़गारी की हालत पिछले 45 वर्षों में सबसे बुरी है। और अब एक अन्य प्रतिष्ठित संस्थान के अध्ययन ने बताया है कि पिछले 6 वर्षों में देश के कुल रोज़गार में 90 लाख की कमी आ गयी! पहले आबादी

बढ़ने की दर के अनुसार रोज़गार पैदा होने की दर अगर नहीं बढ़ती थी तो भी कुछ-न-कुछ रोज़गार बढ़ता रहता था। मगर पहली बार ऐसा हुआ है कि कुल रोज़गार ही कम हो गया। यानी जितने लोगों को पहले से काम मिला हुआ था, उनकी संख्या बढ़ने के बजाय और कम हो गयी। 2011-12 और 2017-18 के बीच रोज़गार में लगे लोगों में 90 लाख की कमी आयी। अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के सतत रोज़गार केन्द्र की ओर से किये गये एक व्यापक अध्ययन में सरकारी दावों को झुठलाने वाला यह तथ्य सामने आया है।

संतोष मेहरोत्रा और जजाति के. परीदा द्वारा किया गया यह अध्ययन जो तथ्य सामने लाया है, वे अब नये नहीं रह गये हैं, कई अन्य स्रोतों से भी यह बात सामने आयी है, लेकिन यह पहला ऐसा विस्तृत और आधिकारिक अध्ययन है जो सरकारी आँकड़ों के माध्यम से ठोस रूप में यह बताता है कि देश में कुल रोज़गार घट रहा है और बेरोज़गार नौजवानों की रिज़र्व सेना (पूरी तरह बेरोज़गार और हताश) में "भारी पैमाने पर" बढ़ोत्तरी हो रही है। अध्ययन सरकारी और निजी, दोनों तरह की नौकरियों में तेज़ी से बढ़ती ठेका प्रथा के

बारे में भी बताता है। रिपोर्ट बताती है कि ज़्यादातर रोज़गार असंगठित और निजी क्षेत्र में सूक्ष्म और छोटी इकाइयों में ही पैदा हो रहा है। 2017-18 में कुल रोज़गार का 68 प्रतिशत ऐसा ही था। सार्वजनिक क्षेत्र में भी अनौपचारिक नौकरियों का हिस्सा बढ़ गया है जो नियमित सरकारी नौकरियों में कमी को दर्शाता है। रोज़गार में सेक्टर-वार गिरावट वर्ष 2011-12 से 2017-18 के बीच कृषि क्षेत्र में करीब 27 लाख रोज़गार घट गये। कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र में रोज़गार का हिस्सा 49 प्रतिशत से

घटकर 44 प्रतिशत रह गया। श्रम-सघन मैन्युफ़ैक्चरिंग सेक्टर में 35 लाख रोज़गार की कमी हो गयी। इस तरह कुल रोज़गार में मैन्युफ़ैक्चरिंग का हिस्सा घटकर 12.6 से 12.1 प्रतिशत रह गया है। वास्तव में भारत के इतिहास में पहली बार मैन्युफ़ैक्चरिंग क्षेत्र में रोज़गार में गिरावट आयी है! केवल वृद्धि दर में कमी नहीं हुई है, बल्कि सम्पूर्ण संख्या ही घट हो गयी है। रिपोर्ट के लेखकों की टिप्पणी है कि मैन्युफ़ैक्चरिंग रोज़गार में कमी 'मेक इन इण्डिया' के दावों को ग़लत साबित करती है। (पेज 14 पर जारी)

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

## क्या आप मज़दूर बिगुल के ज़मीनी रिपोर्ट नहीं बनना चाहते?

क्या आप नहीं चाहते कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप नहीं चाहते कि मज़दूरों की खबरें जो हर मीडिया से गायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अखबार के ज़रिये लोगों तक पहुँचें?

तो कलम उठाइए और अपने कारखाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

‘मज़दूर बिगुल’ आपका अपना अखबार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अखबारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो कागज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सएप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सएप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में ‘मज़दूर बिगुल’ बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीकों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

ईमेल से भेजने का पता : bigulakhbar@gmail.com

व्हाट्सएप नम्बर : 9721481546

### आपस की बात

## अन्धकार को दूर भगाओ, मज़दूर मुक्ति की मशाल जगाओ

आज हम एक अन्धकारमय और भयानक दौर से गुज़र रहे हैं। हममें से कई लोग ऐसा मानते हैं कि आज जिस ग़रीबी, बदहाली, और भुखमरी का जीवन हम जी रहे हैं, उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अभी हमने मज़दूरों के गौरवशाली इतिहास को जाना नहीं है, जब रूस और चीन में हमारे भाई-बहनों ने अकूत कुर्बानियाँ देकर अपना राज कायम किया था तथा प्रगति के नये-नये कीर्तिमान स्थापित किये थे। हर रोज़ हम हज़ारों की संख्या में अपनी मज़दूर बस्तियों से कारखानों की तरफ़ निकलते हैं और 12-14 घण्टे अपना हाड़-मांस गलाकर अँधेरा होने पर ही अपने दड़बेनुमा कमरों में वापिस आ पाते हैं। इसी तरह अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए हम हर दिन खून-पसीना एक करके मालिकों की तिजोरियाँ भरने में जुटे रहते हैं। परन्तु इतनी कड़ी मेहनत करने के बावजूद जहाँ आज हमें और हमारे परिवार को दो वक़्त की रोटी जुटाना भी मुश्किल पड़ रहा है, वहीं दूसरी तरफ़ हमारा खून चूस-चूस मालिकों की तोंद लगातार फूलती

जा रही है। जहाँ एक तरफ़ सरकार इन मुट्ठीभर धनकुबेरों के ऐशो-आराम के लिए बड़े-बड़े रिहायशी इलाक़े बना रही है जिनमें महँगे स्कूल और अस्पताल जैसी तमाम सुविधाएँ मौजूद हैं, वहीं दूसरी तरफ़ शहर को साफ़-सुथरा बनाने के नाम पर हमारी बस्तियों पर बुलडोज़र चलाया जा रहा है। एक तरफ़ अमीरों के बच्चे साफ़-सुथरे और महँगे स्कूलों में पढ़ने जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ़ हमारे बच्चे स्कूल जाने की उम्र में अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए मेहनत-मज़दूरी करने को मजबूर हैं। मालिक और उनके पैसे से चलने वाली तमाम चुनावी पार्टियाँ चाहती हैं कि यह अँधकारमय युग कायम रहे ताकि वह लगातार हम पर राज कर सके।

वे जानते हैं कि अगर हम अपने अधिकारों के लिए एकजुट होना शुरू हो जायें तो जिन आलीशान महलों में वे रह रहे हैं, उनकी दीवारें सिर्फ़ हमारे नारों और क्रदमों के शोर से ही काँपना शुरू कर देंगी। इसीलिए वे लगातार हमसे कहते रहते हैं कि अपने अधिकारों को जानने और उनके लिए संघर्ष करने से कुछ हासिल नहीं होगा, मज़दूरों का

काम तो बस इतना है कि वो मालिकों का मुनाफ़ा लगातार बढ़ाते रहने के लिए दिन-रात खटते रहे। लेकिन यह तो हमें तय करना है कि क्या हम यँ ही लगातार मालिकों की गुलामी करते रहेंगे? या फिर खुद की और अपनी आने वाली पीढ़ियों की आज़ादी के लिए लड़ने की तैयारी में जुट जायेंगे? अगर हम चाहते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ एक आज़ाद दुनिया में साँस लें तो आज जो सबसे बड़ा काम हमारे सामने है, वो है अपने अधिकारों और मज़दूरों के गौरवशाली इतिहास के बारे में जानकारी हासिल करें। परन्तु सिर्फ़ इतने से ही काम नहीं बनेगा बल्कि मज़दूर मुक्ति के सपने को पूरा करने के लिए ज़रूरी है कि इन विचारों को हम जितना ज़्यादा हो सके अपने मज़दूर साथियों तक पहुँचाएँ। इसके लिए ज़रूरी है कि अपनी-अपनी मज़दूर बस्तियों में अध्ययन चक्र तथा पुस्तकालय स्थापित करें। हालाँकि, इस बात में कोई शक नहीं है कि यह एक लम्बा और मुश्किल रास्ता है लेकिन हर लम्बी यात्रा की तैयारी छोटे-छोटे क्रदमों से ही होती है।

– मनन, शिमला

“बुर्जुआ अखबार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अखबार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।” – लेनिन

## ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूरों का अपना अखबार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट  
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी ‘मज़दूर बिगुल’ से जुड़ सकते हैं :  
www.facebook.com/MazdoorBigul

### ‘मज़दूर बिगुल’ का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. ‘मज़दूर बिगुल’ व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. ‘मज़दूर बिगुल’ भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और ‘बिगुल’ देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. ‘मज़दूर बिगुल’ स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टियों के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर “कम्युनिस्टों” और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. ‘मज़दूर बिगुल’ मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को ‘मज़दूर बिगुल’ नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अखबार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको ‘मज़दूर बिगुल’ का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul

खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400

पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकखर्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये  
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

## मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006  
फ़ोन: 8853093555

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मूल्य : एक प्रति – 5/- रुपये

वार्षिक – 70/- रुपये (डाक खर्च सहित)

आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये



# नहीं थम रहा ऑटो सेक्टर के श्रमिकों पर कम्पनी प्रबन्धन का प्रहार

## होण्डा से 3,000 ठेका मज़दूरों को निकालने के विरोध में संघर्ष तेज़

होण्डा मोटरसाइकिल एण्ड स्कूटर्स के मानेसर प्लांट से मन्दी की आड़ में पिछले तीन महीनों से ठेका श्रमिकों को 50 से 100 के समूह में निकाला जा रहा है। धीरे-धीरे कम्पनी ने लगभग तीन हजार मज़दूरों की छँटनी कर दी है। अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में भी मज़दूरों ने इसके विरोध में सांकेतिक भूख हड़ताल की थी। मगर कम्पनी प्रबन्धन अपनी मनमानी करने में लगा हुआ है। 4 नवम्बर को कम्पनी की ओर से मन्दी का बहाना करते हुए यह नोटिस लगा दी गयी कि ऑटो सेक्टर में अभी सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है, इसलिए नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी माह तक जिन श्रमिकों का 'रिलीविंग' होना था उनका नवम्बर माह में कर दिया जा रहा है, वे अगले तीन माह तक घर बैठेंगे; अभी कम्पनी श्रमिकों को काम देने में असमर्थ है। 5 नवम्बर को सुबह से ही कम्पनी गेट पर भारी पुलिस बल तैनात कर दिया गया और लगभग 300 ठेका श्रमिकों को काम पर नहीं लिया गया। इस पर रोष प्रकट करते हुए ठेका श्रमिकों ने यूनियन व प्रबन्धकों से दरियाफ़्त की मगर जब कोई नतीजा नहीं निकला तो जो ठेका श्रमिक कम्पनी के अन्दर थे वे बाहर निकल आये और निकाले गये श्रमिकों के साथ वहीं धरने पर बैठ गये।

इन ठेका मज़दूरों के समर्थन में

स्थायी मज़दूरों की यूनियन भी आ गयी जिसने प्रबन्धन से वार्ता करने के लिए ठेका मज़दूरों को लेकर एक कमेटी बनायी। कई दिन की वार्ता के बाद

दर से हिसाब किया जाये प्रबन्धक ऐसे मज़दूरों को निशाना बना रहे हैं जो पिछले 7 से 10 वर्ष तक इस कम्पनी में काम कर रहे थे। इन्हीं मज़दूरों की

कम्पनियाँ ठेका श्रमिकों से सालों-साल काम कराती हैं मगर बीच-बीच में 7 या 11 महीने पर मज़दूरों की 'रिलीविंग' कर देती हैं। 'रिलीविंग' यानी ठेके

की भर्ती करती है। रिलीविंग के वक़्त मज़दूरों की ठेका एजेंसी को बदल दिया जाता है यानी पिछले सत्र में जो मज़दूर कमल इण्टरप्राइजेज़ का श्रमिक था, वह अगले सत्र में केसी या सुकमा सन्स एण्ड एसोसिएट्स का श्रमिक हो जाता है। इस तरह सालों-साल तक मुख्य उत्पादन बेल्ट पर स्थायी प्रकृति का काम कर रहे मज़दूर महज़ कुछ माह से काम करने वाले ठेका श्रमिक के तौर पर दिखाये जाते हैं।

पिछले कई महीने से, इस प्लांट में सालों से काम कर रहे मज़दूरों को इसी तरीक़े से रिलीविंग करके घर बैठा दिया जा रहा है। मज़दूरों को झूठा आश्वासन दिया जाता है कि जब काम दोबारा गति पकड़ेगा तो उन्हें वापस काम पर बुला लिया जायेगा। इसी तरह छँटनी करने से पहले कारखाने के अन्दर उनके काम की जगह को कई बार बदला जाता है ताकि निकाले गये मज़दूर संगठित होकर संघर्ष न छेड़ दें। नीमराणा स्थित हीरो कम्पनी ने तो तमाम श्रम क़ानूनों को ताक़ पर रखते हुए कोई स्थाई मज़दूर रखा ही नहीं है। वहाँ सिर्फ़ ठेका मज़दूरों से काम कराया जाता है। इसी बात से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि मज़दूरों का भविष्य कितना अन्धकारमय है।

मैनेजमेंट मन्दी की आड़ में मज़दूरों

(पेज 4 पर जारी)



भी कोई नतीजा नहीं निकला क्योंकि प्रबन्धन अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ था।

कई-कई साल से काम कर रहे ठेका मज़दूरों का समय से पहले रिलीविंग कर छँटनी करने के खिलाफ़ संघर्ष कर रहे मज़दूरों की माँग है कि उन्हें स्थायी श्रमिक का दर्जा दिया जाये या फिर न्यूनतम एक लाख रुपये सालाना की

मेहनत से मुनाफ़ा बटोरकर मालिकों ने भारत में 3 नये प्लांट खड़े किये हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार हाल ही में त्योहारों के मौसम में होण्डा से 5 लाख दुपहिया वाहनों की बिक्री हुई। कम्पनी प्रबन्धन द्वारा स्थायी कर्मचारियों पर उत्पादकता बढ़ाने का दबाव डाला जा रहा है। ऑटोमोबाइल सेक्टर में तमाम

पर काम करने वाले मज़दूरों की ठेका अवधि बदल दी जाती है, ताकि सालों से काम कर रहे मज़दूरों को काग़ज़ों पर मात्र चन्द महीनों से काम करता हुआ दिखलाया जा सके। होण्डा कम्पनी सुकमा सन्स एण्ड एसोसिएट्स, केसी इण्टरप्राइजेज़ और कमल इण्टरप्राइजेज़ नामक ठेका एजेंसियों के ज़रिये मज़दूरों

## शिरोकी टेक्निको प्राइवेट लिमिटेड के निकाले गये

### ठेका मज़दूरों का संघर्ष जारी

शिरोकी टेक्निको प्राइवेट लिमिटेड, बावल, ज़िला रेवाड़ी (हरियाणा) के मज़दूर कोर्ट के आदेश के कारण फ़ैक्टरी गेट से 300 मीटर दूर धरना दे रहे हैं और संघर्ष को आगे बढ़ाने की तैयारी में लगे हैं। कम्पनी ने मज़दूरों की माँगों पर लिखित समझौता किया था, पर उन्हें लागू करने के बजाय उल्टा मज़दूरों के अधिकारों व जायज़ माँगों पर हमला कर दिया। दिवाली के बाद एकाएक तानाशाहाना ढंग से घोषणा कर दी कि कम्पनी में ठेका मज़दूरों के ठेकेदारों का ठेका ख़त्म कर दिया गया है और सबका गेटबन्द कर छँटनी की घोषणा कर दी।

धरना स्थल पर विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियों के नेता भी हाज़िरी लगाने पहुँचे। बावल इलाके के कांग्रेसी विधायक चिरंजीव राव भी आये और दो दिन के अन्दर मज़दूरों को कम्पनी के भीतर करवाने का वायदा करके चल दिये। इसके अलावा स्वराज इण्डिया और आप पार्टी के नेता भी आये। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के नेता भी आये।

शुरू से ही संघर्षरत मज़दूरों के साथ रही ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) के कार्यकर्ताओं ने लगातार मज़दूरों के बीच इस बात पर ज़ोर दिया कि पूँजीपतियों के

चन्दे से चुनाव लड़ने वाली पार्टियों के चुनावी घोषणापत्र में न तो ठेका प्रथा को ख़त्म करने की कोई बात है और न ही ज़मीन पर इसको लेकर किसी तरह का संघर्ष और आन्दोलन है, इसलिए इनके भरोसे न रहकर ऑटो सेक्टर के ठेका और परमानेंट मज़दूरों को अपने इलाके के दूसरे मज़दूरों को साथ लेकर साज़ा मुद्दों पर साज़ा संघर्ष पर ही भरोसा करना चाहिए। ऐसी लड़ाई एक सेक्टरगत/पेशागत यूनियन के तहत ही लड़ी जा सकती है। आज श्रम विभाग, प्रशासन, सरकारें, बिकाऊ मीडिया सभी फ़ैक्टरी मालिकों के लिए काम करते हैं, हमें अपनी सामूहिक एकता पर भरोसा करना चाहिए। हमें अपने आन्दोलन को जल्द से जल्द व्यापक बनाने के प्रयास करने चाहिए।

पिछले दिनों एक तरफ़ ठेका मज़दूरों को मदर कम्पनी और वेण्डर कम्पनी जब चाहे तब निकाल रही है, दूसरी तरफ़ परमानेंट मज़दूरों की यूनियन और फ़ेडरेशन परमानेंट मज़दूरों की छँटनी रोकने, ज़बरन रिटायरमेंट (वीआरएस) को रोकने में या अधिकांश मामलों में समझौतों को करवाने और/या लागू करवाने में कामयाब नहीं हो पा रही है। सामूहिक मोलभाव (बारगेनिंग) की ताक़त कम हुई है जिसके चलते

मज़दूर कारखाना मालिकों और सरकारों की तानाशाही को टक्कर नहीं दे पा रहे हैं।

आज इस बात को समझने की ज़रूरत है कि फ़ैक्टरी आधारित परमानेंट मज़दूरों की यूनियन में ठेका मज़दूरों की सदस्यता और बराबर की भागेदारी न होने के कारण ठेका और परमानेंट के साज़ा संघर्षों में ठेका मज़दूर के मुद्दे कहीं पीछे छूट जाते हैं, और अधिकांश मामलों में ठेका मज़दूरों को काम से निकाल दिया जाता है। आज ज़रूरत है कि ठेका और परमानेंट मज़दूरों की साज़ी पेशागत (सेक्टरगत) यूनियन हो, जिसमें ठेका मज़दूरों को यूनियन में सदस्यता से लेकर चुनने और चुने जाने का परमानेंट मज़दूरों के बराबर का हक़ हो। जिससे ठेका मज़दूरों के मुद्दे और बराबर की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। इसलिए ठेका मज़दूरों को अपने संघर्ष का ठेका किसी और को देने के बजाय आज सेक्टरगत यूनियन में जल्द से जल्द एकजुट होना होगा। आज इस सेक्टरगत यूनियन में ठेका और परमानेंट मज़दूर दोनों बराबर के सदस्य होंगे और एकजुट होकर अपने संघर्ष को सही मायने में आगे बढ़ा पायेंगे। यही आज के वक़्त की ज़रूरत है।

— बिगुल संवाददाता

## इस मज़दूर की मौत का ज़िम्मेदार कौन है?

पिछले 13 अक्टूबर को धारुहेड़ा औद्योगिक क्षेत्र स्थित पीएमआई कम्पनी के एक मज़दूर मुकेश कुमार की मृत्यु हो गयी। मज़दूरों के लिए बने रिहायशी लॉज से रात के वक़्त पहली मंज़िल से गिरकर उसकी मौत हुई। 27 साल का मुकेश ग्राम चहुआ, ज़िला मुजफ़्फ़रपुर, बिहार का रहने वाला था। उसके पीछे एक ढाई साल की बच्ची और गर्भवती पत्नी है। कारखानेदार ने मज़दूरों के रहने के लिए कारखाना कैम्पस के साथ ही एक रिहायशी लॉज बनवा रखा है, ताकि दिन-रात चाहे जब मज़दूरों से काम करवाया जा सके। इस कारखाने में काम करने वाले क़रीब 700 मज़दूरों में आधे मज़दूर वहीं बने लॉज में रहते हैं। एक कमरे में 4 से 8 मज़दूरों को ठूसकर रखा जाता है। कुल 63 कमरों में 300 से अधिक श्रमिक रहते हैं।

यह हाल केवल इसी कम्पनी का हो, ऐसी बात नहीं है। गुडगाँव और उसके आसपास लाखों मज़दूर ऐसे ही हालात में रहते हैं। खस्ताहाल, बदइन्तजामी से भरे लॉज कई बीमारियों के साथ-साथ ऐसे हादसों के लिए भी ज़िम्मेदार हैं, जिसमें मुकेश की जान गयी। जिस जगह से मुकेश नीचे गिरा, वहाँ कमरे के बाहर आने-जाने के लिए केवल एक फुट का पतला-सा गलियारा है, जिसमें कोई रेलिंग नहीं है। इस लॉज में टॉयलेट, बाथरूम, गलियारा, सीढ़ियाँ सब टूटी-फूटी हैं और गन्दगी तथा फिसलन बहुत ज्यादा है। आये दिन मज़दूर वहाँ दुर्घटनाओं व बीमारियों के शिकार होते रहते हैं। लेकिन अपनी नौकरी और रहने की जगह के छूटने के डर से वे चुप रहने के लिए मजबूर होते हैं।

पीएमआई कम्पनी टाटा व अन्य कम्पनियों की बसों व ट्रकों की बाँड़ी बनाती है। यहाँ मज़दूर

दसियों साल से ठेके पर काम कर रहे हैं। उन्हें न तो पक्का किया जाता है और न ही उनके लिए पीएफ़, ईएसआई, पेंशन जैसी किसी सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध है और न ही कोई पहचान कार्ड है जिससे वह साबित कर सकें कि वह कम्पनी में सालों से काम कर रहे हैं। कारखाने के अन्दर सुरक्षा के ख़राब इन्तज़ाम के कारण अक्सर हादसे होते रहते हैं, जिसमें अंग-भंग होने से लेकर जान तक चली जाती है। इस कारखाने में श्रम क़ानूनों का दिनदिहाड़े घोर उल्लंघन चल रहा है और प्रशासन आँखें मूँदे हुए है। ऐसे हादसों के बाद मज़दूरों को डरा-धमकाकर बात दबा दी जाती है। किन्तु इस बार ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन व अन्य कारखानों के मज़दूरों के दबाव में कारखाना प्रबन्धन मुआवज़ा देने के लिए तैयार हुआ।

ऑटो सेक्टर के मज़दूरों के साथ हर जगह इसी तरह का अमानवीय सलूक किया जा रहा है। इसलिए बिना वक़्त गँवाये मज़दूरों को अपनी यूनियन मज़बूत कर इन अन्यायों के खिलाफ़ संघर्ष छेड़ना होगा। यही आज हमारे अस्तित्व की शर्त है वरना हम इसकी क़ीमत अपनी जान गँवाकर चुकाते रहेंगे।

कारखाना परिसर या रिहायशी जगहों पर होने वाली मौतें हादसा नहीं बल्कि मुनाफ़े की हवस में की गयी हत्याएँ हैं। इन मौतों के लिए ज़िम्मेदार न सिर्फ़ वह कम्पनी, मालिकान व प्रबन्धन है जहाँ मज़दूर काम करता है, बल्कि पूरी पूँजीवादी व्यवस्था है जिसमें मज़दूर बस मालिकों के लिए मुनाफ़ा पैदा करने वाली मशीन के कल-पुरजे मात्र बना दिये जाते हैं।

— बिगुल संवाददाता



# नोएडा की 13 कॉलोनियों में पाँच वर्षों से बिजली के लिए नागरिकों का संघर्ष जारी

उत्तर प्रदेश के नोएडा में 50,000 से अधिक की आबादी वाली 13 कॉलोनियों में बिजली आपूर्ति की माँग को लेकर वहाँ के लोग 5 वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं। नोएडा औद्योगिक विकास प्राधिकरण के तहत हिण्डन नदी के निकट सोरखा एक्सटेंशन, सैनिक विहार, गणेश नगर, विष्णु नगर कॉलोनी सेक्टर 115 नोएडा, अम्बेडकर सिटी, उन्नति विहार सेक्टर 123 नोएडा, साई एनक्लेव, राधा कुंज, कृष्णा कुंज, ककराला खासपुर एक्सटेंशन, अक्षरधाम, श्याम वाटिका और बालाजी एनक्लेव सहित 13 ऐसी कॉलोनियाँ हैं जहाँ बिजली सप्लाई की कोई व्यवस्था नहीं है।

नोएडा के इस हिस्से में निम्न मध्यवर्गीय मेहनतकश आबादी रहती है जिनमें अधिकांश मज़दूर, रेहड़ी-खोमचे वाले, छोटे दुकानदार, सिक्योरिटी गार्ड, ड्राइवर, ई-रिक्शा चालक, दर्जी, छोटे ठेकेदार, पेण्टर आदि हैं। ज़मीन खरीदने में यहाँ अधिकांश लोगों के जीवनभर की कमाई और बचत दाँव पर लगी हुई है। 2006-07 में यह इलाका पूरी तरह से वीरान था जिसके कारण ज़मीन कुछ सस्ती थी। 2006-07 के आसपास ही इन कॉलोनियों का विस्तार होना शुरू हुआ, तभी से यहाँ विद्युतीकरण की माँग हो रही है। स्वयं बिजली विभाग के मुताबिक इस क्षेत्र में 20,000 घर हैं। यहाँ रह रहे लोगों ने ज़मीनों की खरीद में सभी कानूनी औपचारिकताएँ पूरी की हैं। इसके बावजूद उन्हें उनका वाजिब हक़ नहीं मिला है। जैसे-जैसे कॉलोनियों का विस्तार होता

गया यह माँग भी ज़ोर पकड़ती गयी और प्रशासन की लापरवाही के खिलाफ़ लोग एकजुट होते गये। सरकारें आर्थीं गयीं पर इस सम्बन्ध में अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई।

अम्बेडकर नगर कॉलोनी की वाहिदा बीबी और अन्य महिलाओं ने बताया कि ट्रांसफ़ार्मर, तार व खम्भे लगवाने के लिए लोगों ने आपस में मिलकर पैसों का इन्तज़ाम किया। कई लोगों ने इसके लिए क़र्ज़ भी लिया और लगभग दौगुनी रक़म देकर इसका ब्याज़ भी चुकाया। लोगों के पैसों से ट्रांसफ़ार्मर और खम्भे तो लग गये और आज भी वैसे ही खड़े हैं पर बिजली तब भी नहीं आयी। बिजली विभाग के अधिकारी 'डूबवाले क्षेत्र में किसी तरह के विकास कार्य पर प्रतिबन्ध लगे होने' का हवाला देकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। परन्तु सवाल यह है कि यदि 2010 से ही डूब वाले क्षेत्र में कोई निर्माण कार्य न करने का सख्त सरकारी आदेश जारी था तो इस क्षेत्र में कॉलोनियाँ कैसे विकसित हुईं और बिजली कनेक्शन कैसे बाँटे गये। यह भी रहस्य ही है कि डूब क्षेत्र के यूसुफ़पुर, चकशाहवेरी, हैबतपुर, चोटपुर, छिज़ारसी, सरस्वती कुंज और तिगरी सहित कई अन्य कॉलोनियों में आधी-अधूरी ही सही, पर बिजली की व्यवस्था है। अगर सरकारी रोक थी तो यह कैसे हुआ?

एक तरफ़ स्थिति यह है और दूसरी तरफ़ आये दिन नेतागण चुनाव जीतने के बाद बिजली देने का वादा करके खिसक लेते हैं। भाजपा सांसद व पूर्व केन्द्रीय

मंत्री महेश शर्मा ने तो बाकायदा मंच से घोषणा की थी कि वह सभी लोगों को सौभाग्य योजना के तहत बिजली कनेक्शन दिलवाने के लिए विभाग की ओर से कैम्प लगवायेंगे और यह वादा किया था कि सभी 13 कॉलोनियों के प्रत्येक घर को 500 रुपये में कनेक्शन दिया जायेगा तथा सभी अन्य नागरिक सुविधाएँ दी जायेंगी। आज भी उस कैम्प का कॉलोनीवासियों को इन्तज़ार है, हालाँकि इस कार्यक्रम के आयोजन में समिति के 84,000 रुपये खर्च हो गये थे। चुनाव खत्म होने के बाद सांसद महोदय को तो ग़ायब होना ही था, बिजली का भी आज तक अता-पता नहीं है।

इन झूठे आश्वासनों से तंग आकर 24 अगस्त 2016 को सेक्टर 25 में हज़ारों लोगों ने एकजुट होकर बिजली की माँग को लेकर एक बड़ा प्रदर्शन किया। 2 दिन तक चले इस प्रदर्शन के बाद बिजली विभाग ने 70 केवी का एक अस्थायी ट्रांसफ़ार्मर दिया और मीटर नहीं होने की बात कहते हुए यह भरोसा दिलाया कि 3 महीने के अन्दर मीटर उपलब्ध होते ही सभी लोगों को कनेक्शन देने की प्रक्रिया शुरू कर दी जायेगी।

प्रदर्शन में केवल पुरुष ही नहीं महिलाएँ भी गोद में बच्चे लेकर दिन भर धरना स्थल पर बैठी रहती थीं। सुबह घर का काम जल्दी खत्म कर वे 11 बजे तक धरना स्थल पहुँच जाती थीं और दिन ढलने के बाद लौटतीं। पुरुष रात धरना स्थल पर ही बिताते थे। दोपहर में लोगों का खाना भी धरना स्थल पर ही बनता था।

इसके बाद भी उनकी बात सुनने कोई नहीं पहुँचा। उल्टे प्रदर्शनकारियों को शौचालय का इस्तेमाल करने से रोकने के लिए उस पर ताला लगा दिया जाता था। महिलाओं को शौच के लिए काफ़ी दूर जाना पड़ता था। इन कठिनाइयों के बाद भी लोग डटे रहे। लेकिन राजनाथ सिंह के सुपुत्र, विधायक पंकज सिंह के झूठे आश्वासन को सच्चा मानकर उन्होंने धरना समाप्त कर दिया। पंकज सिंह ने वादा किया था कि तीन महीने के अन्दर सभी 13 कॉलोनियों में बिजली का इन्तज़ाम हो जायेगा। परन्तु अन्त में उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हुआ और हमेशा की तरह वे बुरी तरह ठगे गये।

इन कॉलोनियों में केवल बिजली की समस्या ही नहीं है, यहाँ पर लोगों को किसी भी तरह की नागरिक सुविधा हासिल नहीं है और न ही किसी सरकारी योजना का उन्हें लाभ ही मिलता है। कॉलोनियों तक जाने वाले रास्तों को भी लोगों ने खुद चन्दा करके बनाया है। सड़क, नाली, पानी, सार्वजनिक शौचालय, सार्वजनिक प्याऊ, सीवर, फॉगिंग, साफ़-सफ़ाई जैसी कोई भी सुविधा इन कॉलोनियों को प्राप्त नहीं है। बिजली नहीं होने के कारण रात के अँधेरे की वजह से खराब रास्तों पर कई बार दुर्घटनाएँ हो चुकी हैं। कीड़े-मकोड़े, साँप अँधेरे में दिखते नहीं। उनके काटने से वहाँ 2 बच्चों सहित 3 लोगों की मौत हो चुकी है। जिन लोगों के पास टीवी, फ्रिज, पंखा जैसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण हैं भी वे भी गते में बाँधकर रख दिये गये हैं। यहाँ तक कि मोबाइल चार्ज करने के लिए भी इन लोगों

को 3-4 किलोमीटर दूर जाना पड़ता है।

बिजली की यह ज़रूरत विभाग के अधिकारियों व कर्मचारियों की कमाई का ज़रिया बन गया है। पास के एक गाँव से जुगाड़ के ज़रिये कनेक्शन दे दिया गया है जिससे लोग अपनी छोटी-मोटी ज़रूरतें भले पूरी करते हों पर इसके बदले उन्हें नियमित तौर पर अधिकारियों-कर्मचारियों की जेब भरनी पड़ती है। डूबवाले क्षेत्रों में अधिकारियों ने अपने आदमी तैनात कर रखे हैं जो हर महीने वसूली करते हैं, और साथ ही मीटर लगवाने के नाम पर भी लोगों से पैसा लेते हैं। इस तरह हर महीने 4 करोड़ रुपये इधर से उधर होते हैं।

बिजली विभाग के भ्रष्ट कर्मचारियों और अधिकारियों के पौ-बारह हैं। वे परेशानहाल मेहनतकश आबादी को लूटने में लगे हैं। इसके लिए वे तरह-तरह के तरीक़े अपनाते हैं। दल-बल के साथ पहुँचकर कभी तार काट लाते तो कभी पोल उखाड़ देते हैं। जब लोग मिन्नतें करते तो उनसे पैसा झटककर 'आपसी सहमति' दिखाते हुए सामान वापस कर दिये जाते हैं। ऐसा महीने में 5-6 बार होता है। आज भी बिजली वहाँ नहीं पहुँची है लेकिन जुमाने के नाम पर कॉलोनी के लोगों से काली कमाई का सिलसिला अभी भी बदस्तूर जारी है। विभाग के ही आँकड़े बताते हैं कि वर्ष 2018-19 में इस क्षेत्र में 78 लाख रुपये की कानूनी वसूली की जा चुकी है। लेकिन वहाँ के बाशिन्दे अभी तक बिजली का इन्तज़ार कर रहे हैं।

— सत्येन्द्र सार्थक

## होण्डा से 3,000 ठेका मज़दूरों को निकालने के विरोध में संघर्ष तेज़

(पेज 3 से आगे)  
की छँटनी कर रहा है जोकि पूरी तरह ग़लत है। मैनेजमेंट कह रहा है कि दूसरे प्लांट के मुक़ाबले इस प्लांट में उत्पादन की लागत अधिक है मगर इस तर्क का आधार मैनेजमेंट की घनघोर मज़दूर-विरोधी मानसिकता ही है। अन्य प्लांटों में काम करने वाले मज़दूरों की औसत उम्र करीब 25 साल है जबकि इस प्लांट के मज़दूरों की औसत उम्र लगभग 42 साल है क्योंकि यह भारत में होण्डा का सबसे पुराना प्लांट है जिसमें मज़दूर लगभग 10 साल से काम कर रहे हैं। ऐसे में स्वाभाविक है कि उनका वेतन नये मज़दूरों से अधिक होगा। उनके श्रम की बदौलत बेहिसाब मुनाफ़ा कमाने के बाद अब मैनेजमेंट बेशर्मा के साथ कह रहा है कि इन मज़दूरों की वजह से लागत अधिक हो गयी है। अगर ऐसा है तो मज़दूरों से पहले मैनेजमेंट के लोगों को हटाया जाना चाहिए जो लाखों रुपये वेतन ले रहे हैं।

### संघर्षरत मज़दूरों के साथ होण्डा प्रबन्धन का अमानवीय व्यवहार

पूरे जोशो-ख़रोश के साथ होण्डा के संघर्षरत मज़दूर संघर्ष के मैदान में डटे रहे हैं। लगातार, दिन और रात, मज़दूर अन्दर व बाहर अपनी लड़ाई लड़ते रहे हैं। बाहर बैठे मज़दूर सड़क किनारे घास पर दरी बिछाकर ठण्ड में रात गुज़ारते रहे हैं। धूल-धक्कड़, भूख-प्यास सब झेलते हुए मज़दूर डटे रहे हैं। कारख़ाने के अन्दर के मज़दूरों के साथ होण्डा प्रबन्धन ने नंगई

पर उतरकर अमानवीय व्यवहार किया। कारख़ाने के अन्दर मज़दूरों को ठण्ड में सीढ़ियों पर सोने के लिए मजबूर किया गया और उन्हें खाने-पीने से वंचित करने के लिए कंपनी ने कैंटीन भी बन्द कर दी। मज़दूरों के दबाव में कैंटीन खुली, लेकिन उसे दोबारा बन्द कर दिया गया। हद तो तब हो गयी जब अन्दर शौचालय भी बन्द कर दिया गया और शौचालय के दरवाज़े वेल्डिंग करके जाम करा दिये गये। होण्डा प्रबन्धन मज़दूरों के रोज़गार के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य के साथ भी खिलवाड़ कर रहा था। कारख़ाने के अन्दर काफ़ी मज़दूरों की सेहत भी खराब हो गयी थी। बाहर बैठे मज़दूर अन्दर के अपने साथियों को खाना पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे तो प्रबन्धन उन्हें भी रोक रहा था। मज़दूरों के काफ़ी विरोध के बाद अन्दर के मज़दूरों के लिए खाना उपलब्ध कराया गया।

जिस समय सारे मीडिया में अयोध्या के फ़ैसले को लेकर चर्चाएँ छायी हुई थीं उस समय होण्डा के हज़ारों मज़दूर मानेसर में कारख़ाने के अन्दर-बाहर धरने पर बैठे हुए थे जिनके लिए अयोध्या से ज़्यादा ज़रूरी उनकी रोज़ी-रोटी का सवाल है। मगर बिकाऊ मीडिया के लिए यह कोई ख़बर नहीं थी।

यूँ तो ठेका श्रमिकों की नौकरियाँ शुरू से ही दाँव पर रही हैं। मगर हाल के दिनों में इनकी स्थिति भयंकर रूप से बदतर हो गयी है। जब-जब मालिक के मुनाफ़े में गिरावट आयी है ठेका श्रमिकों को उसकी क्रीमत अपनी नौकरी गँवाकर

चुकानी पड़ी है। पूरे ऑटो सेक्टर में 85 से 90% ठेका श्रमिकों की भागीदारी है। लेकिन सबसे ज़्यादा मार इन्हीं को झेलनी पड़ रही है। होण्डा के साथ-साथ ऑटो सेक्टर की तमाम ऐसी फ़ैक्टरियाँ हैं जहाँ ठेका श्रमिकों को काम से बाहर कर दिया गया है। हाल ही के दिनों में शिरोकी टेक्निको इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड से 280 ठेका श्रमिक बाहर कर दिये गये। कंसाई नेरोलैक से ठेका कर्मचारियों की छँटनी के साथ-साथ यूनियन पदाधिकारियों को बर्खास्त कर दिया गया। राने एनएसके स्टीयरिंग सिस्टम प्राइवेट लिमिटेड से 250 ठेका कर्मचारियों को निकाल दिया गया।

आज पूरे ऑटो सेक्टर में हाहाकार मचा हुआ है। मगर न सरकार पर, न मालिकों पर इसका कोई असर पड़ रहा है। सभी कम्पनियों के कर्मचारी अपनी-अपनी माँगों को लेकर अलग-अलग संघर्षरत हैं। मगर पिछले लम्बे समय से हमने देखा कि अलग-अलग लड़कर ज़्यादा कुछ हासिल नहीं किया जा सका है। आज मज़दूरों को इन तमाम आन्दोलनों को एक कड़ी में पिरोने की ज़रूरत है। कम्पनी गेट के अन्दर स्थायी व ठेका कर्मचारियों की एकता के साथ-साथ पूरे सेक्टर की एक सेक्टरगत एकता कायम करने की ज़रूरत है। यह न सिर्फ़ वक़्त की माँग है, बल्कि यही वह रास्ता है जिस पर चलकर मज़दूर अपने रोज़गार सहित तमाम अधिकारों और बुनियादी माँगों को लेकर संघर्ष कर सकते हैं।

### छपते-छपते होण्डा मानेसर के मज़दूरों के संघर्ष का 15वाँ दिन

20 नवम्बर होण्डा प्लांट के अन्दर बैठे मज़दूरों के साथ बाहर बैठे मज़दूरों का धरनास्थल पर एक साथ बैठने का पहला दिन था। इसके पहले मज़दूरों का एक हिस्सा कारख़ाने के अन्दर डेरा जमाये हुए था, तो दूसरा कारख़ाने के मुख्य दरवाज़े के पास बाहर डटा हुआ था। जिसके कारण कारख़ाना प्रबन्धन को विवश होकर अनिश्चित काल के लिए उत्पादन रोकना पड़ा था। कल 14 दिनों बाद होण्डा यूनियन के आश्वासन पर मज़दूर कारख़ाना परिसर के बाहर आ गये। अभी भी प्रबन्धन और श्रमिक पक्ष में मज़दूरों की माँगों को लेकर वार्ता जारी है। अन्दर बैठे श्रमिकों ने पिछले 14 दिनों का अपना अनुभव साझा किया। मज़दूरों ने बताया कि किस तरह प्रबन्धन गीदड़भभकी देने से लेकर खाने पीने की बदइन्तजामी, शौचालय बन्द करने आदि हथकण्डों से मज़दूरों को तोड़ने का असफल प्रयास कर रहा था। उन्हें जान बूझकर ठण्डा, कच्चा खाना दिया जा रहा था ताकि मज़दूर बीमार पड़ें और कारख़ाना परिसर छोड़कर चले जायें। बीमार मज़दूरों को अस्पताल रेफर करने के नाम पर कारख़ाना परिसर से निकाला जाये। पिछले 14 दिन से एक ही जोड़ी कपड़े में रहने और खाने, सोने की खराब परिस्थितियों के कारण काफ़ी मज़दूरों

का स्वास्थ्य खराब हुआ किन्तु किसी के हौसले में कोई कमी नहीं आयी।

मज़दूरों के समर्थन में ऑटोमोबाइल इंडस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के साथ-साथ बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने सभा में शिरकत की, बात रखी और गीतों की प्रस्तुति दी। ऑटोमोबाइल इंडस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन होंडा मज़दूरों के इस संघर्ष में शुरू से उनके साथ खड़ी है। यूनियन के कार्यकर्ता संघर्षरत मज़दूरों के साथ दिनों रात संघर्ष के मैदान में डटे हैं। यूनियन की तरफ़ से साथी अनन्त ने कहा कि आज पूरे सेक्टर के मज़दूरों की नज़र होण्डा के संघर्षरत मज़दूरों की तरफ़ है। यह संघर्ष ठेकेदारी प्रथा को कठघरे में खड़ा कर रहा है। इसीलिए इस संघर्ष के भी आगे की दिशा इसे एक कारख़ाने की चौहद्दी के बाहर पूरे ऑटो सेक्टर में फैलने की ओर जाती है। ऑटोमोबाइल सेक्टर में जारी मन्दी की मार सबसे ज़्यादा ठेका श्रमिकों के ऊपर पड़ रही है। आज कई अन्य कारख़ानों में मज़दूर ठीक उन्हीं माँगों को लेकर लड़ रहे जिन माँगों को लेकर होण्डा के मज़दूर लड़ रहे हैं। AICWU की तरफ़ से धारूहेड़ा, मानेसर, गुडगाँव में आम मज़दूरों के बीच होण्डा के मज़दूरों के जारी संघर्ष में जुड़ने की अपील करता हुए पर्चा भी बांटा जा रहा है।

— रवि



## दिल्ली में केजरीवाल सरकार द्वारा न्यूनतम मज़दूरी में कागज़ी बढ़ोत्तरी

दिल्ली में सत्तासीन केजरीवाल सरकार ने बड़े जोरशोर से एक प्रेस वार्ता के माध्यम से घोषणा की कि अब दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी में बढ़ोत्तरी की जा रही है। यानी दिल्ली में अब अकुशल मज़दूर को 14,842 (प्रति दिन 571 रु.), अर्धकुशल मज़दूर को 16,341 (प्रति दिन 629 रु.) और कुशल मज़दूर को 17,991 (प्रति दिन 692 रु.) वेतन मिलेगा। दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने भी यह कह डाला कि देश में चल रही आर्थिक मन्दी का असर दिल्ली के मज़दूरों पर नहीं होगा क्योंकि उनकी सरकार द्वारा अब न्यूनतम मज़दूरी बढ़ा दी गयी है।

केजरीवाल ने प्रेस वार्ता के दौरान इस न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाने को एक बड़ी जीत कहा और इसके लिए उनकी पार्टी द्वारा किये गये “संघर्ष” की एक कहानी भी सुनायी कि किस तरह जब केजरीवाल सरकार ने पिछले समय न्यूनतम मज़दूरी बढ़ायी तो दिल्ली के फ़ैक्टरी मालिकों ने इसके खिलाफ़ एक याचिका दिल्ली हाईकोर्ट में डाल दी थी और इस याचिका पर हाईकोर्ट ने मालिकों के पक्ष में फैसला देते हुए बढ़ी हुई न्यूनतम मज़दूरी को ‘असंवैधानिक’ बताते हुए खारिज कर दिया; जिसके चलते कुछ समय के लिए बढ़ी हुई न्यूनतम मज़दूरी रोककर पुनः पुरानी न्यूनतम मज़दूरी दी जाने लगी थी। फिर केजरीवाल सरकार हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ़ सुप्रीम कोर्ट गयी और अभी हाल ही में (14 अक्टूबर 2019) सुप्रीम कोर्ट ने केजरीवाल सरकार के पक्ष में फैसला देते हुए न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाने को सही ठहराया। इस पूरी नौटंकीभरी कहानी में वास्तव में मज़दूरों का वेतन बढ़ा ही नहीं था और न अब नयी न्यूनतम मज़दूरी वास्तव में लागू होने वाली है।

मुख्यमंत्री केजरीवाल द्वारा यह भी दावा किया जा रहा है कि अब पूरे देश में सबसे ज्यादा न्यूनतम मज़दूरी दिल्ली में मिलेगी। पर जब वास्तव में बढ़ी हुई न्यूनतम मज़दूरी लागू ही नहीं होती तो यह एक कागज़ी घोषणा से ज्यादा कुछ नहीं है। जब आपको न्यूनतम मज़दूरी वास्तव में लागू ही नहीं करवानी तो आप उसकी राशि कुछ भी रख सकते हैं; कल ‘आप’ कहने लगे अब न्यूनतम मज़दूरी 50,000 है और दुनिया की सबसे ज्यादा न्यूनतम मज़दूरी है; और ऐसी हवाई घोषणा का मज़दूरों के लिए कोई मतलब नहीं है।

सच्चाई यह कि दिल्ली विधानसभा चुनाव से कुछ माह पूर्व की गयी यह घोषणा महज़ एक कागज़ी घोषणा है। वास्तव में दिल्ली के लगभग 98 फ़ीसदी मज़दूरों के लिए यह वेतन बढ़ोत्तरी होगी ही नहीं। दिल्ली में काम करने वाले मज़दूर भी जानते हैं कि उनके लिए यह घोषणा बहुत बड़ा झूठ और फूहड़ मजाक़ है। दिल्ली में दो दर्जन से अधिक औद्योगिक क्षेत्रों में लाखों मज़दूर स्त्री-पुरुष आठ घण्टे काम के लिए हर माह मात्र 5000 से 8000 रुपये तक में खटते हैं। जब दिल्ली के अधिकतम मज़दूरों को न्यूनतम वेतन ही नहीं मिलता तो

ईएसआई और पीएफ़ तो बहुत दूर की बात है। यहाँ तक कि दिल्ली सरकार के अस्पतालों व सरकारी स्कूलों में काम कर रहे ठेका मज़दूरों को भी वास्तव में इस वेतन बढ़ोत्तरी का कोई लाभ मिल नहीं पाता है। सरकारी विभागों में ठेकेदार कागज़ों में कानून का पालन होते दर्शा देते हैं; पर वास्तव में मज़दूरों को यह मज़दूरी नहीं मिलती। यह बात सरकार भी जानती है। दिल्ली में मज़दूरों के वेतन बढ़ोत्तरी की ऐसी कागज़ी घोषणाएँ दिल्ली की पूर्व मुख्यमंत्री शीला दीक्षित द्वारा भी की जाती रही हैं।

**आम आदमी पार्टी और केजरीवाल सरकार को अगर वाक़ई मज़दूरों की इतनी चिन्ता है तो उनकी सरकार को पिछली न्यूनतम मज़दूरी (13,350 रुपये) और ईएसआई और पीएफ़ को सख़्ती से लागू करवाना चाहिए था।** लेकिन ऐसा नहीं किया जाता है; इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अन्य चुनावबाज़ पार्टियों की तरह ‘आप’ पार्टी भी दिल्ली के फ़ैक्टरी मालिकों से चुनावी चन्दा लेती है, बल्कि आप के कई विधायक खुद फ़ैक्टरी मालिक भी हैं। खुद उनके कारख़ानों में न्यूनतम मज़दूरी नहीं दी जाती है। दिल्ली की सत्ता में रह चुकी पूँजीपतियों

खुलेआम धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं; पर आज तक एक भी मालिक पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी है। हालाँकि जितनी सख़्ती मज़दूर विरोधी नया मोटर वाहन कानून को लागू करने में मोदी सरकार ने दिखायी है (जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा केजरीवाल ने भी की थी) उतनी सख़्ती पूँजीपतियों की कोई भी सरकार कभी श्रम कानूनों को लागू करवाने में नहीं करती। इससे भी साफ़ होता है कि ऐसी घोषणा भी एक जुमला ही है।

नयी न्यूनतम मज़दूरी लागू करवाना केजरीवाल सरकार के लिए एक रस्म अदायगी ही है, क्योंकि असल में केजरीवाल सरकार की मज़दूरों को न्यूनतम वेतन देने की कोई मंशा नहीं है। केजरीवाल को चुनाव में चन्दा देने वाली एक बड़ी आबादी दिल्ली के छोटे-बड़े दुकानदारों, फ़ैक्टरी मालिकों और ठेकेदारों की है, वह इन्हें निराश कर मज़दूरों के जीवन स्तर को नहीं सुधार सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाली आबादी के पास यह साबित करने का कोई भी तरीक़ा नहीं है कि वे किस फ़ैक्टरी में काम करते हैं, अगर यह साबित हो जाये तो मालिक अपनी फ़ैक्टरी का नाम बदल देता है और बताता

कानून की धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं। जब विधायक महोदय की खुद की फ़ैक्टरी में न्यूनतम वेतनमान नहीं लागू होता, तो क्या वे वज़ीरपुर के अपने मालिक भाइयों की फ़ैक्टरियों में न्यूनतम वेतन लागू करवायेंगे?

यही हाल आम आदमी पार्टी के अन्य विधायकों का है, क्योंकि केजरीवाल के पचास प्रतिशत से अधिक विधायक करोड़पति हैं यानी बड़े दुकानदार, व्यापारी या फ़ैक्टरी मालिक हैं। साफ़ है कि मज़दूरों के लिए आम आदमी पार्टी व कांग्रेस-भाजपा में कोई अन्तर नहीं है। अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के लिए बने कानूनों को तो मालिक और ठेकेदार मानते ही नहीं हैं। दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूरों को आज भी 5 से 6 हजार रुपये मिलते हैं। किसी को भी न्यूनतम मज़दूरी नहीं मिल पाती। खुद सरकारी विभागों में इसका खुलेआम उल्लंघन होता है। पूरे देश में सरकारी विभागों तक में 70 प्रतिशत के करीब मज़दूर ठेके पर, आउटसोर्सिंग, प्रोजेक्ट आदि के तहत आरज़ी तौर पर काम कर रहे हैं। सरकारी विभागों में क्लर्क, अध्यापक, टेक्निशियन आदि से हस्ताक्षर किसी और राशि पर करवाये जाते हैं और दिया

से लेकर 2015 के बीच केवल 11-25% पंजीकृत कारख़ानों का निरीक्षण किया गया। निश्चित ही, इस कानून से जिसको थोड़ा-बहुत फ़ायदा पहुँचेगा, वह सरकारी कर्मचारियों और संगठित क्षेत्र का छोटा-सा हिस्सा है, परन्तु यह लगातार सिकुड़ रहा है। दिल्ली की 65 लाख मज़दूर आबादी में क्या न्यूनतम मज़दूरी का संशोधित कानून घरेलू कामगारों, ड्राइवरों, प्राइवेट सफ़ाईकर्मियों आदि पर लागू हो पायेगा?

90 प्रतिशत मज़दूर आबादी जो दिहाड़ी, कैज़ुअल, पीसरेंट, ठेके पर काम कर रही है, उसे न्यूनतम मज़दूरी कानून के मुताबिक़ मज़दूरी मिल पा रही है या नहीं इसकी कोई भी जानकारी दिल्ली सरकार के पास नहीं है। चुनाव में वायदा करके भी यह अब तक ठेका कानून को लागू नहीं करवा पायी। श्रम विभाग की स्थिति की अगर बात करें तो उसके पास इतने कर्मचारी भी नहीं हैं कि सभी औद्योगिक क्षेत्रों व अन्य मज़दूरों की शिकायतों की जाँच-पड़ताल की जा सके।

साफ़ है कि देश की राजधानी में जब मज़दूर इतनी अमानवीय, नारकीय स्थितियों में काम कर रहे हैं तो पूरे देश के मज़दूरों की दशा क्या होगी। वैसे देश में मज़दूरों के हित के लिए 260 श्रम कानून बने हुए हैं लेकिन ये “श्रम कानून” “शर्म कानून” बनकर रह गये हैं।

अगर हम इस असम्भव बात को एक बार मान भी लें कि मज़दूर को वर्तमान न्यूनतम मज़दूरी के अनुसार वेतन मिलने लगे, तो भी मज़दूर की ज़िन्दगी के हालात में कोई ज़मीन-आसमान का अन्तर नहीं आयेगा। वैसे भी आज सरकार जिन मापदण्डों पर न्यूनतम मज़दूरी तय करती है वे नाकाफ़ी और अधूरे हैं क्योंकि इसमें केवल मज़दूर के भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को ही आधार बनाया जाता है। इसलिए न्यूनतम मज़दूरी रेखा वास्तव में कुपोषण-भुखमरी रेखा है। आज सभी मज़दूर साथी जानते हैं कि सारे श्रम कानून ठेकेदारों और मालिकों की जेब में रहते हैं वहीं दूसरी ओर कानूनों को लागू करने वाले श्रम विभाग में चपरासी से लेकर अफ़सरों तक घूस का तंत्र चलता है। ‘पैसा फ़ेंको, तमाशा देखो!’ और ऐसा भी नहीं है कि इस गोरखधन्धे की ख़बर नेताओं-मंत्रियों को न हो। क्योंकि दिल्ली में ही कई बड़े नेताओं की फ़ैक्टरियाँ चल रही हैं जहाँ कोई श्रम कानून लागू नहीं होता। साथियों! लम्बे संघर्षों और कुर्बानियों की बदौलत जो कानूनी अधिकार हमने हासिल किये थे, उनमें से ज्यादातर हमसे छीने जा चुके हैं। जो शेष कागज़ों पर मौजूद भी हैं उनका व्यवहार में कोई मतलब नहीं रह गया है। ज़ाहिरा तौर पर, मज़दूरों की असली मुक्ति तो मेहनतकश सत्ता के क्रायम होने पर ही होगी। लेकिन आज चुपचाप अन्याय और अत्याचार सहने से क्या यह बेहतर नहीं कि हम एकजुट होकर अपने हक़-अधिकार की लड़ाई को तेज़ कर दें?

— बिगुल संवाददाता



की अन्य पार्टियों, कांग्रेस और भाजपा की तुलना में आम आदमी पार्टी में बस इतना अन्तर है कि केजरीवाल सरकार श्रम कानूनों को लागू करवाने का ढोंग ज़रूर करती दिखती है। इनकी सरकार ने माना कि दिल्ली में न्यूनतम वेतन लागू न होने की वजह यह थी कि ‘न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948’ के तहत अभी दिल्ली में न्यूनतम वेतन न देने वालों के खिलाफ़ सख़्त कार्रवाई के प्रावधान नहीं थे। आप सरकार के संशोधित प्रावधान के अनुसार मज़दूरों को तय न्यूनतम वेतनमान से कम पर नौकरी पर रखने वाले नियोक्ताओं पर जुर्माने की रकम 500 रुपये से बढ़ाकर 20 से 50 हजार रुपये तक कर दी गयी है। साथ ही इसमें एक से तीन साल तक की जेल की सज़ा या दोनों का प्रावधान किया गया है। पर यह भी एक हवा-हवाई बात ही है; दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी सहित श्रम कानूनों की

है कि पुरानी फ़ैक्टरी में तो वह मालिक ही नहीं था और इसके बाद श्रम विभाग मज़दूर पर यह ज़िम्मेदारी डाल देता है कि वह साबित करे कि मालिक कौन है।

इस घोषणा के बारे में खुद विधायक और निगम पार्षद ही दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्रों में प्रचारित नहीं कर रहे हैं, क्योंकि वे या तो खुद फ़ैक्टरी मालिक हैं या उनके चन्दे पर चुनाव जीतकर आये हैं। यह बात कुछ तथ्यों से ही साफ़ हो जाती है। जब 2013 में पहली बार केजरीवाल की सरकार बनी थी तो इसी केजरीवाल सरकार का पहला श्रम मंत्री गिरीश सोनी चमड़े की फ़ैक्टरी का मालिक था, जिसमें मज़दूरों को न्यूनतम वेतन नहीं दिया जाता था। वज़ीरपुर के विधायक राजेश गुप्ता और निगम पार्षद विकास गोयल की वज़ीरपुर इण्डस्ट्रियल एरिया में फ़ैक्टरियाँ हैं, जहाँ न्यूनतम वेतन तो दूर श्रम

कुछ और जाता है। बेरोज़गारी के आलम की वजह से मज़दूरों में हस्ताक्षर कर भी दिये जाते हैं। फ़ैक्टरियों में मालिक मज़दूर से पहले ही ख़ाली कागज़ पर अँगूठा लगवाकर रख लेता है। ईएसआई कार्ड बनवाता है तो उसे हर दूसरे-तीसरे महीने रद्द करवा देता है और फिर से नया कार्ड बनवाता है ताकि अगर वह किसी केस में फँसे तो दिखा सके कि फ़लाँ मज़दूर तो उसके यहाँ हाल में ही काम करने आया है।

यह सब केजरीवाल के फ़ैक्टरी मालिक, व्यापारी और करोड़पति विधायकों या उनके करोड़पति समर्थकों को पता है। पिछले दिनों आयी कैग की रिपोर्ट इनकी हकीक़त सामने ला देती है। इस रिपोर्ट के अनुसार कारख़ाना अधिनियम, 1948 का भी पालन दिल्ली सरकार के विभागों द्वारा नहीं किया जा रहा है। वर्ष 2011



# हरियाणा विधानसभा चुनाव का परिणाम और प्रदेश की जनता के सामने उपस्थित नयी चुनौतियाँ

हरियाणा के विधानसभा चुनाव नतीजे आ चुके हैं। प्रदेश में एक बार फिर से भारतीय जनता पार्टी की सरकार बन चुकी है। भाजपा बहुमत से दूर थी लेकिन जजपा (जननायक जनता पार्टी) ने भाजपा को समर्थन देकर सत्ता तक पहुँचाया। संघियों को नाथ घालने के दमगजे भरने वाला दुष्यन्त चौटाला अमित शाह के हाथों खुद ही नाथ घलाकर बैठ गया है। मुद्दे की बात यह है कि हरियाणा में भाजपा-जजपा की गठबन्धन सरकार बन गयी है।

हालाँकि भाजपा और दलाल मीडिया के 75 सीटों पर करने के सभी दावे धूल-धूसरित हो गये हैं और हरियाणावी में कहें तो 'संघियों के कड़ तळे की माट्टी लिंकड़गी है'। जनता में भाजपा के प्रति ज़बर्दस्त गुस्सा तो था किन्तु प्रदेश के पैमाने पर कोई विकल्प उपस्थित न होने की वजह से इस या उस वोट के व्यापारी का दाँव लगना ही था। 90 विधानसभा सीटों में से भाजपा को 40, कांग्रेस को 31, जजपा (जननायक जनता पार्टी) को 10, इनेलो (इण्डियन नेशनल लोकदल) को एक, हलोपा (हरियाणा लोकहित पार्टी) को एक तथा निर्दलीय विधायकों को सात सीटें मिली हैं। 90 विधायकों में से 12 अपराधिक पृष्ठभूमि के हैं जिनकी संख्या पिछले सत्र में 9 थी। वहीं इस बार 90 में से 84 विधायक करोड़पति हैं, पिछले सत्र में इनकी संख्या 75 थी।

विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियों के लिए ये चुनाव परिणाम दुखद या सुखद हो सकते हैं किन्तु प्रदेश की जनता के लिए नयी-नयी आफ़तें रास्ता तलाश रही हैं। पिछले पाँच साल के दौरान भाजपा ने लूट, झूठ और दमन के जो नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं उन्हें चार चाँद लगना लगभग तय है। चूँकि स्पष्ट बहुमत नहीं होने के चलते विधानसभा में विभिन्न जन-विरोधी बिल पास करने और जन-विरोधी कानून बनाने में हुड्डा एण्ड कम्पनी के जुबानी जमाखर्च (हालाँकि

देश स्तर पर कांग्रेस द्वारा सभी दमनकारी कानूनों व संशोधनों में मोदी सरकार को मौन या मुखर समर्थन के इतिहास को देखते हुए इसकी उम्मीद भी कम ही है) के चलते भाजपा को थोड़ी सी दिक्कत हो सकती है किन्तु बुनियादी नीतियों में कोई फ़र्क न होने के कारण प्रदेश की जनता पर दुख-तकलीफ़ों के पहाड़ टूटना तय है। लुब्बेलुबाब यह है कि पहले की तरह इस बार भी प्रदेशवासियों को अपनी जुझारू-लड़ाकू एकजुट ताक़त पर ही भरोसा करना चाहिए जिसका प्रदर्शन उन्होंने पिछले कुछ समय किया भी है।

ईवीएम पर मात्र दो बातें करके आगे बढ़ेंगे। पहली बात, ईवीएम में छेड़छाड़ के अपने फ़ायदे के लिए इस्तेमाल के प्रति सशक्त ज़्यादातर का मानना है कि फ़िलहाल इसका सीमित इस्तेमाल होगा क्योंकि फ़्रासीवादी अभी कारपोरेट पूँजी व दलाल मीडिया के भरोसे जीत को लेकर आश्वस्त हैं तथा खुल्लमखुल्ला ईवीएम धाँधली से व्यवस्था की विश्वसनीयता भी संकटग्रस्त हो सकती है। लेकिन सामने आये तथ्यों से साफ़ लगता है कि इसका इस्तेमाल किया गया है, चाहे सीमित पैमाने पर ही सही। दूसरा, यदि ईवीएम में छेड़छाड़ असम्भव है तो डालने के बाद और गणना करने से पहले वोटों में अन्तर क्यों पाया जाता है? ईवीएम स्ट्रॉन्ग रूम के बाहर और अन्दर भाजपाई ही क्यों मक्खियों की तरह भिनभिनाते हुए पाये जाते हैं? ईवीएम रखरखाव में इतनी अनियमितताएँ क्यों पायी जाती हैं? ईवीएम पर सवाल उठाने वाले भाजपाई ही अब शान्त क्यों हैं? हरियाणा में 21 अक्टूबर को 70, 75 और 80 सीटों के दावे करने वाला गोदी मीडिया 23 तारीख को ईवीएम अनियमितता पकड़े जाने के बाद और अन्य उम्मीदवारों के स्ट्रॉन्ग रूम के बाहर सख्त पहरे के पश्चात अचानक 40, 42 और 45

## - भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI), हरियाणा इकाई

सीटों पर आकर कैसे सिमट गया?

### धरा रह गया 75 पार, बड़े-बड़े दिग्गज हुए लाचार !

सरकारी अमला, बिकाऊ गोदी मीडिया, ईवीएम, सीबीआई-ईडी, बेशुमार पैसा और थोक भाव में अन्य पार्टियों के बहुरूपियों की ताक़त के बावजूद भी भाजपा बहुमत के 46 के आँकड़े को नहीं छू पायी। मोदी की सात रैलियों, शाह की पाँच रैलियों, जे. पी. नड्डा की तीन, खट्टर की 77, राजनाथ सिंह की नौ, नितिन गडकरी की एक, हेमा मालिनी की नौ, सन्नी देओल की चार जनसभाओं और झूठे वायदों, जाति-पाति की राजनीति के बावजूद 75 पार के दावे करने वाले कमलगट्टे 40 पर ही टाँय-टाँय फिस्स हो गये। हरियाणा खट्टर कैबिनेट के दस में से आठ मंत्री चारों खाने चित्त हो गये। इन तथाकथित कद्दावर नेताओं में वित्त मंत्री कैप्टन अभिमन्यु, कृषि मंत्री ओम प्रकाश धनखड़, भाजपा प्रदेशाध्यक्ष सुभाष बराला, शिक्षा मंत्री रामबिलास शर्मा, परिवहन मंत्री कृष्ण लाल पंवार, महिला एवम बाल विकास मंत्री कविता जैन, सहकारिता मंत्री मनीष प्रोवर, समाज कल्याण मंत्री कृष्ण कुमार बेदी, खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री करुण देव काम्बोज के नाम शुमार हैं। लोकसभा चुनाव के समय भाजपा ने 79 विधानसभा सीटों पर बढ़त ली थी। उसके बाद धारा 370 भी हट गयी, फ़र्ज़ी राष्ट्रवाद भी अपनी बुलन्दियों को छू गया, बिना पर्ची-खर्ची के नौकरी देने के झूठ का भी खूब यशोगान हुआ, तथाकथित ईमानदार सरकार के भी खूब नगाड़े बजे किन्तु भाजपाइयों को बढ़त मिली मात्र 40 सीटों पर। इससे इतना तो ज़ाहिर है कि भाजपा सरकार जनता में बेहद अलोकप्रिय हो चुकी है और हाँफते-काँपते, ईवीएम धाँधली और वोटों की खरीद-फ़रोख्त के बाद 40 के आँकड़े तक ही पहुँच पायी है।

### सरकार बनाने के खेल की रेलमपेल !

भाजपा नेतृत्व बहुमत हासिल करने के लिए अभी तीन-तिकड़में शुरू करता कि उससे पहले ही जजपा गठबन्धन हेतु तैयार मिली। कर्नाटक और गोवा के अनुभव से साफ़ है कि भाजपा सत्ता के लालच में किसी भी हद से गुज़र सकती है। वैसे छः निर्दलीय विधायकों को सीधा करना अमित शाह के लिए कोई बड़ी बात नहीं थी किन्तु उप-मुख्यमंत्री और कुछ अन्य पदों-कुर्सियों के लालच ने चौटाला खानदान के नये चिराग दुष्यन्त को 10 विधायकों के साथ खट्टर के चरणों में पहले ही पहुँचा दिया। विधायकों की बोली लगने, पद और कुर्सी के चक्कर में पाला बदल लेने के मामले पूरे देश में ही सुर्खियों में रहते हैं किन्तु आयाराम-गयाराम की अवसरवादी राजनीति में हरियाणा अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

### प्रदेशवासियों को सशक्त पूँजीवादी विपक्ष नहीं बल्कि सशक्त क्रान्तिकारी विकल्प चाहिए !

चुनाव परिणाम आते ही हरियाणा प्रदेश के लिबरल, "समझदार" और सामाजिक जनवादी या संशोधनवादी कम्युनिस्ट कांग्रेस के सलाहकार की भूमिका में आ गये और 'काश' लगा-लगाकर नसीहतों की बारिश करने लगे। जैसे काश हुड्डा को कुछ पहले कमान मिल गयी होती, काश कांग्रेसी थोड़ा और ज़मीन से जुड़ गये होते, काश जनता थोड़ी और समझदारी दिखाती, काश दुष्यन्त और हुड्डा गलबहियाँ कर लेते, काश दुष्यन्त भाजपा का दामन न थामता आदि-आदि इनके सभी 'काश' पूरे हो जाते और भाजपा हरियाणा में चुनाव हार भी जाती तब भी न तो फ़्रासीवाद का खतरा कम होना था और न ही कोई अन्य वैकल्पिक सरकार

जनता के जीवन में खुशहाली लाने वाली थी। राजस्थान की गहलोट सरकार और मध्यप्रदेश की कमलनाथ सरकार की कारगुजारियों के बाद किसी शक-शुबहे की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। फ़्रासीवाद को चुनावों से नहीं हराया जा सकता क्योंकि वह सत्ता में रहे न रहे, आम जनता व खासकर मज़दूर वर्ग का चरम शत्रु बना रहता है। यह बात सच है कि धुर-फ़्रासीवादी पार्टी की बजाय कोई भी दूसरी ताक़त सत्ता में आती है तो जनता के लिए स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर होती है और उसे कुछ तात्कालिक राहतें मिलने की कुछ गुंजाइश होती है। साथ ही जनता की अगुवा शक्तियाँ आगामी संघर्षों की तैयारी करने के मद्देनज़र भी अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में होती हैं, हालाँकि नवउदारवाद के दौर में कांग्रेस जैसी सेप्टर-राइट पूँजीवादी पार्टी के बारे में भी गुलाबी सपने बुनना जनता की क्रान्तिकारी अगुवा ताक़तों के लिए घातक होगा। लेकिन सुधारवादी और सामाजिक जनवादी सलाहकारों के 'काश' और आहों-कराहों में यह सोच झलकती है कि भाजपा की बजाय कोई दूसरी शक्ति के सत्ता में आने से सभी बीमारियों का इलाज हो जाना था। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के मौजूदा उदारीकरण के दौर में सरकार चाहे किसी की भी बने यह बात तय है कि उदारीकरण-निजीकरण की रफ़्तार में कोई गुणात्मक फ़र्क नहीं आना है।

आज जनता का सही विकल्प ऐसी ताक़त ही हो सकती है जो न केवल सड़क के संघर्षों को एक सूत्र में पिरो सके और पूँजीवादी चुनावों व संसद-विधानसभा के मंचों पर प्रभावी रणकौशलतात्मक हस्तक्षेप कर पूँजीवादी व्यवस्था के सीमान्तों को उजागर कर सके बल्कि मौजूदा व्यवस्था की सीमाओं को इंगित करते हुए एक नयी व्यवस्था का मॉडल और उसे हकीकत में तब्दील करने का

(पेज 7 पर जारी)

## हरियाणा में क्लर्क भर्ती ने खोली राज्य में बेरोज़गारी की पोल !

### दर-दर की ठोकरें खा रहे युवा और उनके हितों का सौदा कर रहे चुनावी मदारी !

हरियाणा चयन आयोग के द्वारा निकाली गयी क्लर्क के 4,858 पदों की भर्ती के लिए 15 लाख से ज़्यादा छात्र-युवाओं ने आवेदन किया था। इस हिसाब से नौकरी आवेदन करने वाले 309 युवाओं में से मात्र एक को ही मिलेगी! अभ्यर्थियों को परीक्षा देने के लिए 200 से लेकर 300 किलोमीटर तक का सफ़र तय करना पड़ा और परिवहन की कोई सुचारू व्यवस्था नहीं थी। युवाओं को एक अदद नौकरी के लिए अपना जीवन जोखिम में डालना पड़ता है जिसके चलते इसी भर्ती की जद्दोज़हद में करीब 18 युवा अपने जीवन से ही हाथ धो बैठे। पहले की भर्तियों में भी बेरोज़गार युवाओं को ऐसी ही परेशानियों का सामना करना पड़ता था परन्तु सरकार ने उन घटनाओं से कोई सीख नहीं ली। परीक्षा केन्द्र नज़दीक भी दिये जा सकते थे। जिससे छात्रों का समय और पैसा दोनों बच सकते हैं। जिन छात्रों का अगले

दिन सुबह पेपर होता है उन्हें पहले दिन ही निकलना पड़ता है और ठहरने के लिए धक्के खाने पड़ते हैं। क्या धक्के खा रहे युवा किसी नेता-मंत्री के बेटा-बेटी हैं? नहीं! क्या ये किसी अफ़सर-ठेकेदार-बिल्डर की सन्तान हैं? नहीं! इनमें से ज़्यादातर प्रदेश के ग़रीब मज़दूर-किसान और छोटे-मोटे काम-धन्धा करने वालों की औलादें हैं। फिर भला सरकार क्यों बोझ ले? खट्टर एण्ड मण्डली को इससे क्या, चाहे कोई जिये या मरे।

सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआरई) के ताज़ा आँकड़ों के अनुसार हरियाणा में बेरोज़गारी की दर 28.7% है जो कि देश के किसी भी राज्य में सबसे ज़्यादा और राष्ट्रीय बेरोज़गारी दर (8.4%) की लगभग तीन गुनी है। रोज़गार की इतनी बुरी हालत होने के बावजूद हरियाणा की खट्टर सरकार बड़ी ही बेशर्मी के साथ अपनी पीठ थपथपा रही थी कि उसने

हरियाणा के नौजवानों को रोज़गार दिये हैं! जबकि आँकड़े चीख-चीखकर कह रहे हैं कि रोज़गार पर इतना बड़ा संकट आज से पहले कभी नहीं आया था।

भाजपा ने 2014 के चुनाव से पहले नौकरियाँ देने के बारे में लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकी थीं किन्तु अन्त में जाकर चन्द हजार पदों पर कुछ ही भर्तियाँ पूरी हुई थीं। रोड़वेज, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मूलभूत विभागों में ही लाखों-लाख पद अभी तक भी खाली पड़े हैं। विभिन्न विभागों और महक़मों के कर्मचारियों को पक्का करने का वायदा भी भाजपा ने नहीं निभाया। प्रदेश के पढ़े-लिखे लाखों युवा बेबस हैं और छोटी-मोटी नौकरियों के पीछे दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। असल में हरियाणा भाजपा को जनता के काम करने में कम और जातिवाद की राजनीति तथा झूठ बोलने के कौशल पर अधिक भरोसा है! हरियाणा में 1995-96 में 4,25,462 सरकारी-अर्ध सरकारी

नौकरियाँ थीं जोकि 20 साल बाद घटकर मात्र 3,66,829 रह गयीं। यानी प्रदेश की तमाम सरकारें हर साल औसतन 3,100 नौकरियाँ खा गयी हैं!

देश के संविधान का अनुच्छेद 14 कहता है कि सभी को 'समान नागरिक अधिकार' हैं और अनुच्छेद 21 के अनुसार सभी को 'मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार' है। किन्तु ये अधिकार देश की बहुत बड़ी आबादी के असल जीवन से कोसों दूर हैं। क्योंकि न तो देश स्तर पर एक समान शिक्षा-व्यवस्था लागू है तथा न ही सभी को पक्के रोज़गार की कोई गारण्टी है! हर काम करने योग्य स्त्री-पुरुष को रोज़गार मिलने पर ही उसका 'जीने का अधिकार' सुनिश्चित होता है। 'मनरेगा' में सरकार ने पहली बार माना था कि रोज़गार की गारण्टी देना उसकी ज़िम्मेदारी है किन्तु यह योजना भी भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गयी। न केवल ग्रामीण और न केवल

100 दिन बल्कि हरेक के लिए उचित जीवनयापन योग्य पक्के रोज़गार के प्रबन्ध की ज़िम्मेदारी भारतीय राज्य व सरकारों की बनती है। सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ें चाहिए (1) काम करने योग्य हाथ (2) विकास की सम्भावनाएँ (3) प्राकृतिक संसाधन। क्या हमारे यहाँ इन तीनों चीज़ों की कमी है? जी, नहीं! क्रतई नहीं! पूँजीवादी राज्य सभी को रोज़गार दे ही नहीं सकता। मगर इस व्यवस्था के दायरे में जो नौकरियाँ देना सम्भव है, उनके लिए भी सरकारों पर केवल जनान्दोलनों के माध्यम से ही दबाव बनाया जा सकता है। बहरहाल हरियाणा प्रदेश में दोबारा से जजपा के समर्थन से भाजपा की सरकार बन चुकी है। शिक्षा और रोज़गार जैसे मुद्दों के लिए जनता को फिर से अपनी कमर कस लेनी होगी।



# महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव के नतीजे और भविष्य की चुनौतियाँ

देश में अभूतपूर्व मन्दी है और बेरोज़गारी चरम सीमा पर है। नोटबन्दी, जीएसटी, मंत्रीगणों की बेशर्मा बातें लोग अभी भूले नहीं हैं। महाराष्ट्र में बड़ी संख्या में घोटाले, जनवादी संस्थाओं पर हमले, भयंकर बेरोज़गारी, महंगाई, बाढ़ पीड़ितों का गुस्सा और देश के स्तर पर भाजपा की फ़ासीवादी मोदी सरकार के कारनामों के चलते जनता में बड़े पैमाने पर असन्तोष था। इसके बावजूद फ़ासीवादी भाजपा-शिवसेना सबसे अधिक सीटें ले आये। भले ही उनकी सीटें उनकी उम्मीद से काफ़ी कम रहीं जिसके चलते अब चारों बड़ी पार्टियों के बीच सरकार बनाने की की कृताघसीटी चल रही है।

इतने अलोकप्रिय होने के बावजूद भाजपा-शिवसेना को अधिक सीटें मिलने का कारण यही है कि अर्थव्यवस्था का संकट क्रायम है और जनता का दमन करने की आवश्यकता भी। इस काम को अंजाम देने के लिए मालिक, पूँजीपति, बिल्डर आदि की चहेती पार्टी अब भी भाजपा है, उनका 'लौहपुरुष' मोदी है। इसलिए इस पूँजीपति वर्ग के पैसे के दम पर हजारों करोड़ रुपये खर्च करके, मीडिया के सहारे, और आर.एस.एस. के कांडर के दम पर, जनता के गुस्से के बावजूद, रोज़गार-महंगाई-मन्दी के बरक्स कश्मीर-मन्दिर-बांग्लादेशी जैसे विभाजनकारी मुद्दों पर प्रचार करके एक बार फिर से भाजपा-शिवसेना जनता के एक विचारणीय हिस्से को प्रभावित करने में सफल रहे हैं। इसका एक कारण जनता के बीच राजनीतिक वर्ग चेतना की कमी भी है। कांग्रेस-राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी की सीटें बढ़ने से कई लोग बेवजह उत्साहित दिख रहे हैं साथ ही यह भी बात चल रही है कि अगर वंचित बहुजन अघाड़ी ने कांग्रेस गठबन्धन की कुछ सीटें नहीं खायी होती तो नतीजों की तस्वीर कुछ और होती। ऐसी बातें करने वाले अभी तक जोड़-घटाव की राजनीति से बाहर नहीं आये हैं। सच्चाई यही है कि भाजपा-शिवसेना की विजय हुई है। इसमें ईवीएम धाँधली की भी कुछ भूमिका होने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है। लेकिन यही तो आज के फ़ासीवाद की खासियत

## — भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI), महाराष्ट्र इकाई

है कि वह पूँजीवादी लोकतंत्र की तमाम संस्थाओं के केवल खोल ही रखता है, उसकी अन्तर्वस्तु को समाप्त कर देता है। इसलिए चुनाव आयोग, चुनाव की प्रक्रिया, न्यायपालिका, नौकरशाही, सशस्त्र बलों व पुलिस के भीतर तक फ़ासीवादी संघ परिवार ने अपनी जड़ें जमायी हैं और उसी के बूते आज वह अपने फ़ासीवादी मन्सूबों को अन्जाम दे रही है। वैसे भी यदि कांग्रेस-एनसीपी या वंचित बहुजन अघाड़ी, मनसे जैसा कोई भी पक्ष सत्ता में आये भी तो हम मज़दूर-मेहनतकशों को निजीकरण, छँटनी, तालाबन्दी, आदि नीतियों से छुटकारा नहीं मिलेगा क्योंकि इन सारी पार्टियों का भी असली मक़सद मज़दूरों के शोषण से मालिकों की सेवा करना ही है। यह ज़रूर है कि साम्प्रदायिक फ़ासीवादी भाजपा-शिवसेना गठबन्धन और अन्य पूँजीवादी चुनावी दलों में अन्तर है। फ़ासीवाद मज़दूर वर्ग का सबसे बड़ा शत्रु है क्योंकि यह पूँजीपति वर्ग के सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्से की नमन तानाशाही की नुमाइन्दगी करता है और इसके लिए निम्न-पूँजीपति वर्ग का एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन खड़ा करता है, जिसका चरित्र साम्प्रदायिक, जातिवादी, नस्लवादी, क्षेत्रवादी या अन्य किसी प्रकार का अस्मितावाद हो सकता है।

भाजपा को अकेले बहुमत न मिलने के चलते फिर से एक बार सत्ता और पूँजीपतियों की दलाली के हिस्से के लिए मोलभाव शुरू हो गया है। 'महाजनादेश' की बात करने वाले भाजपा-शिवसेना की सीटें कम होने के बाद शिवसेना ने भाजपा को तेवर दिखाये और कई दिन चले मोलभाव के बावजूद "हिन्दू-एकता" की बात करने वाली दोनों पार्टियों में समझौता नहीं हो पाया।

मौक़ा देखकर कांग्रेस और राष्ट्रवादी कांग्रेस शिवसेना को समर्थन देकर सरकार बनाने की कोशिश में लग गये हैं। सेक्युलरिज़्म की बात करने वाली इन दोनों पार्टियों को 1992 में मुम्बई में भयंकर दंगों को अन्जाम देने वाली, बाबरी

मस्जिद गिराये जाने का खुलकर समर्थन करने वाली और मुसलमानों से लेकर उत्तर भारतीयों तक को हिंसा का निशाना बनाने वाली शिवसेना अब पाक-साफ़ नज़र आने लगी है। इन दलों का असली चरित्र पूँजी की सेवा, मुनाफ़ा और धन्ये की रक्षा है, इसलिए ऐसे गँठजोड़ इतिहास में भी हुए हैं और आगे भी होंगे। इसलिए मज़दूर-मेहनतकशों को समझ जाना चाहिए कि चुनाव के समय एक-दूसरे पर इनकी भौ-भौ सिर्फ़ इस बात के लिए होती है कि पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी सत्ता में कौन करेगा और किसे उसके कमीशन का बड़ा हिस्सा प्राप्त होगा।

इस बार प्रचार के दौरान आये अनुभव के आधार पर कहें तो "हमें तो वोट देना ही नहीं है", "सब 5 साल में एक बार आते हैं", "किसी को भी वोट दो तो ईवीएम से जायेगा कमल को ही" ऐसी प्रतिक्रियाएँ और कई बस्तियों/कॉलोनियों के बाहर लगे "यहाँ वोट माँगने न आये" के बैनर जनता के बीच की निराशा और विकल्पहीनता को स्पष्ट रूप से इंगित कर रहे थे। वोटिंग का गिरा हुआ प्रतिशत इसी का एक लक्षण है। हाल ही में हुए बाढ़ के चलते लोगों में कोई मदद न पहुँचने के चलते उनके बीच कोई पूँजीवादी उम्मीदवार प्रचार के लिए भी जान नहीं रहा था। इस चुनाव में भी ईवीएम के बारे में कई आरोप और शंकाएँ सामने आयीं। ईवीएम के विरोध में अविश्वास सर्वव्याप्त है, लेकिन वो असंगठित है और इसलिए व्यक्त नहीं हो पा रहा है। जनता की ये विविध अभिव्यक्तियाँ जहाँ एक ओर जनता को संगठित कर एक क्रान्तिकारी विकल्प निर्मित करने की आवश्यकता को चिह्नित कर रही हैं। वहीं मेहनतकश जनता के व्यापक समुदाय पूँजीवादी चुनावों में शिरकत करते हैं इसलिए उनके बीच चुनाव के मंच पर भी मज़दूरों और मेहनतकशों के स्वतंत्र पक्ष को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। आर.डब्ल्यू.पी.आई. (RWPI) इन दोनों ही लक्ष्यों को पूरा करने से अभी दूर है, लेकिन उन तक पहुँचने के लिए प्रतिबद्ध है।

फ़ासीवादी केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के शासन में अब अगले पाँच साल हम मज़दूरों-मेहनतकशों को अपने रोज़गार, मज़दूरी, और जीने के अधिकार पर और बड़े हमलों का मुकाबला करने के लिए तैयार होना होगा। अपने न्यायसंगत अधिकारों को पाने के लिए हमें चुनावी राजनीति में तो जाना ही होगा, लेकिन चुनाव क्रान्ति नहीं लाते इस बात को समझते हुए, क्रान्तिकारी परिवर्तन की लड़ाई के लिए हमें सड़कों पर संघर्ष के लिए संगठित होना भी शुरू करना होगा। इस लड़ाई को संगठित करने के लिए RWPI प्रतिबद्ध है।

## महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव 2019 में RWPI का प्रदर्शन रास्ता कठिन है, पर संकल्प दृढ़ है

महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव 2019 में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की तरफ़ से पर्वती (पुणे), मानखुर्द-शिवजीनगर (मुम्बई) और अहमदनगर शहर से मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी रणकौशलात्मक चुनावी हस्तक्षेप के तहत उम्मीदवार खड़े किये गये। इसके पहले लोकसभा चुनाव में अहमदनगर और उत्तर-पूर्वी मुम्बई से भी चुनाव लड़ा गया था।

इन तीनों जगह पर चुनाव पूरी तरह RWPI के कार्यक्रम और उस पर मज़बूती से चलने वाले परिश्रमी वालण्टियर्स और मज़दूर-मेहनतकश साथियों और इन्साफ़पसन्द जनता के जुटाये संसाधनों के दम पर लड़ा गया। मज़दूर-मेहनतकश के बीच से जुटाया गया सहयोग ही हमारे लिए उनके समर्थन की सही निशानी है। ऐसी पार्टी ही मज़दूर वर्ग के हित की बात कर सकती है और उसके लिए लड़ सकती है।

पर्वती से परमेश्वर जाधव को 250 मत मिले, मानखुर्द से बबन ठोके को 397 और अहमदनगर शहर से संदीप सकट को 661 मत मिले। पर्वती में चुनावी राजनीति में मज़दूर वर्ग के राजनीतिक हस्तक्षेप के तहत RWPI पहली बार उतरी, वहीं अहमदनगर व मानखुर्द में लोकसभा का एक अनुभव मौजूद था। दोनों ही जगह

लोकसभा चुनाव की तुलना में विधान सभा क्षेत्र में RWPI के उम्मीदवार के मतदान प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। इन तीनों ही मतदान क्षेत्रों के साथ पूरे राज्यभर में नतीजों में यह रुझान दिखाई दिया कि व्यापक मेहनतकश जनसमुदायों में राजनीतिक चेतना का अभाव है और वह अपने ही वर्ग हितों के बरक्स जाति-धर्म, अन्धराष्ट्रवाद, झूठे प्रचार, और यहाँ तक कि शराब और पैसे के बदले भी वोट दे देती है। इसके लिए मुख्य रूप से यह व्यापक मेहनतकश जनता दोषी नहीं है, बल्कि वे जीवन स्थितियाँ दोषी हैं, जिनमें कि पूँजीवादी व्यवस्था उन्हें रखती है। इससे RWPI के लिए यह कार्यभार निकलता है कि वह सतत जनसंघर्षों और क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार के द्वारा जनता के भीतर राजनीतिक वर्ग चेतना पैदा करे और उनके बीच अपने सामाजिक आधार को व्यापक और सघन बनाये।

पूँजीवादी चुनावों के खेल में साधारणतः वही जीतता है जिसके पास बड़ी-बड़ी कम्पनियों, ठेकेदारों, अमीर दुकानदारों, ज़मीन मालिकों और कई प्रकार के दलालों का धनबल और बाहुबल हो। यही शक्तियाँ चुनावों में पैसा, दारू, धोखेबाजी, ईवीएम घोटाला, वोटों की खरीद-फरोख्त जैसे बेशरम खेल खेलती हैं। ऐसे में अत्यन्त कम खर्च में, एक सीमित शक्ति के बूते, समाजवादी परिवर्तन के विचार के प्रचार के दम पर, वोटों के ज़रिये मिले समर्थन से पार्टी के वालण्टियर्स में उत्साह तो ज़रूर है, लेकिन पार्टी यह जानती है कि अभी भी एक लम्बा रास्ता तय करना है।

प्राप्त सभी वोट स्पष्ट रूप से श्रमिक वर्ग की राजनीति का समर्थन दिखलाते हैं, और जो छोटी संख्यात्मक वृद्धि हुई है, वह सकारात्मक है; लेकिन पार्टी पूरी तरह से जानती है कि अगले कुछ वर्षों में श्रमिकों के रोज़गार, मज़दूरी, शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, स्वच्छता, आवास जैसे मुद्दों पर संघर्ष खड़े करके और कड़ी मेहनत से लगातार वैचारिक प्रचार के द्वारा ही मज़दूर वर्ग की राजनीति को मज़बूत किया जा सकता है।

## हरियाणा विधानसभा चुनाव का परिणाम और प्रदेश की जनता के सामने उपस्थित नयी चुनौतियाँ

(पेज 6 से आगे)  
क्रान्तिकारी रास्ता भी कमेरे वर्गों के सामने रख सके। आरडब्ल्यूपीआई इसी सोच के साथ पिछले 10 माह से पूँजीवादी चुनावों में मज़दूरों, मेहनतकशों व ग़रीब किसानों के स्वतंत्र स्वर को पेश करने के प्रयास की शुरुआत कर चुकी है। हरियाणा विधानसभा चुनावों में आरडब्ल्यूपीआई ने कलायत की सीट से अपने उम्मीदवार प्रवीन कुमार को खड़ा किया था।

### हरियाणा प्रदेश की जनता के सामने उपस्थित चुनौतियाँ और कार्यभार

चुनावों में अवसरवाद-धनबल-बाहुबल का ही बोलबाला है। लेकिन यदि चुनाव बिल्कुल साफ़-सुथरे हों तो भी चुनी गयी कोई भी सरकार पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी से ज्यादा कुछ नहीं होती। केवल अपवादस्वरूप

स्थिति में ही कोई क्रान्तिकारी शक्ति पूँजीवादी चुनावों में विजयी हो सकती है, हालाँकि इससे भी समाज के क्रान्तिकारी रूपान्तरण की प्रक्रिया नहीं पूरी होती। आरडब्ल्यूपीआई का यह स्पष्ट मानना है कि वर्ग संघर्ष के हर मोर्चे और समाज के हर राजनीतिक क्षेत्र में मेहनतकश जनता के स्वतंत्र पक्ष की उपस्थिति ज़रूरी है चाहे वह संसद-विधानसभा का ही मंच क्यों न हो। संसद और विधानसभा चूँकि पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति बनाने वाली संस्थाएँ हैं इसलिए उनके चुनावों तथा उनके मंच पर मेहनतकशों-मज़दूरों के स्वतंत्र पक्ष की मौजूदगी के ज़रिये ही पूँजीवादी जनवाद के सीमान्तों को उजागर किया जा सकता है। लेकिन आरडब्ल्यूपीआई की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ मुख्य तौर पर इस चुनावी संघर्ष से नहीं बल्कि

जनता के क्रान्तिकारी जनान्दोलनों व वर्ग संघर्ष से निर्धारित होती हैं और चुनावों व संसद-विधानसभा के मंच पर होने वाला संघर्ष भी इसी क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष व जनान्दोलनों से निर्धारित होता है व इसके मातहत होता है।

रोडवेज के निजीकरण का मुद्दा हो या कॉलेजों की बढ़ी हुई फ़ीसों का, निजीकरण का मुद्दा हो या ठेकाकरण का, सरकारी भ्रष्टाचार हो या नौकरशाही का भ्रष्टाचार, ग़रीब किसानों की लूट हो या मज़दूरों-कर्मचारियों का दमन-शोषण, दलितों के उत्पीड़न-शोषण के मामले हों या स्त्रियों का उत्पीड़न, हरियाणा की जनता ने पग-पग पर सड़कों के संघर्षों में सरकार के नाक में नकेल डालने के प्रयास किये हैं। लाठी-गोली-आँसू गैस-झूठे मुकदमों के बावजूद मज़दूरों, कर्मचारियों, किसानों, छात्रों, युवाओं,

स्त्रियों समेत कमेरों के संघर्षों की बदीलत भाजपा को न केवल कई-कई बार झुकना पड़ा बल्कि कई जनविरोधी फ़ैसले भी बैरंग हुए हैं। अब भी हरियाणा की जनता को अपनी एकजुटता पर ही भरोसा करना चाहिए। साथ में हमें अपना स्वतंत्र क्रान्तिकारी राजनीतिक विकल्प भी खड़ा करना होगा तथा मज़बूत करना होगा जिसमें हम पहले ही बहुत देर कर चुके हैं। एक ऐसा विकल्प जो सड़कों से लेकर संसद तक के संघर्षों में मेहनतकश जनता के हितों की नुमाइन्दगी कर सके। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) जनता का ऐसा ही विकल्प बनने के लिए प्रतिबद्ध है।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने हरियाणा में एक सीट से अपने उम्मीदवार को खड़ा किया था। कलायत विधानसभा क्षेत्र से साथी प्रवीन कुमार कमेरे पक्ष के प्रत्याशी के तौर पर

चुनाव लड़ रहे थे। बेहद सीमित संसाधनों और कम समय के प्रचार के बावजूद हमें 512 मत प्राप्त हुए हैं। ये राजनीतिक वोट हैं, जो आरडब्ल्यूपीआई के कार्यक्रम व विचारधारा के आधार पर दिये गये हैं। पूँजीवादी चुनावों में समर्थन के मतों में रूपान्तरित होने के पीछे बहुत से पहलू काम कर रहे होते हैं, जैसे जातिवाद, धनबल, बाहुबल आदि, जिन्हें जनता की राजनीतिक वर्ग चेतना के स्तरोन्नयन के साथ ही खत्म किया जा सकता है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दौरान हम विधानसभा के लाखों लोगों तक जनता का क्रान्तिकारी एजेण्डा और कमेरे तबकों के असली मुद्दे ले जाने में कामयाब रहे हैं। सड़क के हमारे संघर्ष आगे भी लड़े जाते रहेंगे तथा जनता का स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष खड़ा करने का हमारा प्रयास भविष्य में भी जारी रहेगा।



# देशी-विदेशी बड़ी पूँजी का बेरोकटोक राज!

## इसी संघी एजेण्डा को पूरा करने में जुटी मोदी सरकार

(पेज 1 से आगे)

व्यक्ति मासिक खर्च 3.7 प्रतिशत कम होकर 1446 रुपये रह गया, 2011-12 से 56 रुपये कम है। यह रिपोर्ट जून 2019 में जारी होनी थी मगर अच्छे दिनों की पोल खुलने के डर से सरकार ने उसे दबा दिया।

**रिपोर्ट के आँकड़े गरीबी और कुपोषण में खतरनाक बढ़ोत्तरी की ओर इशारा करते हैं, खासकर ग्रामीण इलाकों में।** ग्रामीण आबादी खाने-पीने की चीजों की खरीद पर 2011-12 में 643 रुपये खर्च करती थी, पर 2017-18 में केवल 580 रुपये ही खर्च कर सकी। शहरी इलाकों में खर्च में मात्र 3 रुपये की बढ़ोत्तरी से यह 943 से 946 रुपये हो गया। यहाँ भी अगर हम औसत के नियम को समझें तो पता चलेगा कि भोजन पर गरीबों के खर्च में और भी ज्यादा कमी आयी है। भोजन के अलावा अन्य सामानों पर खर्च में भी ग्रामीण इलाकों में 7.6 प्रतिशत की भारी कमी आयी है।

भारत में पिछली बार उपभोक्ता खर्च में गिरावट 1972-73 के वैश्विक तेल संकट के समय आयी थी। इससे समझा जा सकता है कि हालात कितने बुरे हैं। छिनते रोजगार के कारण आमदनी में कमी और बढ़ती महँगाई इस स्थिति को और गम्भीर बना रहे हैं। खुदरा मूल्य आधारित उपभोक्ता सूचकांक अक्टूबर में पिछले 16 महीनों के सबसे ऊँचे बिन्दु 4.62 प्रतिशत पर पहुँच गया।

औद्योगिक उत्पादन में गिरावट लगातार जारी है। देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग आधे का योगदान करने वाले ऑटोमोबाइल उद्योग की सभी बड़ी कम्पनियों को बीच-बीच में उत्पादन ठप्प करना पड़ रहा है, लाखों गाड़ियाँ बिना बिके सड़ रही हैं, सैकड़ों शोरूम बन्द हो गये हैं और लाखों रोजगार छिन रहे हैं। पिछले अगस्त में देश के कारखानों की कुल पैदावार में कमी आ गयी थी। मैनुफैक्चरिंग और बिजली दोनों का उत्पादन बढ़ने के बजाय घट गया, जोकि व्यापक आर्थिक मन्दी के गहराने का एक और संकेत है।

नये आँकड़े हालात की बढ़ती गम्भीरता को बताते हैं। देश में कुल बिजली उत्पादन क्षमता 3 लाख 63 हजार मेगावाट है। अभी तक बिजली की कमी की बात होती थी, लेकिन पिछली 7 नवम्बर को उच्चतम माँग केवल 1 लाख 88 हजार मेगावाट ही थी, यानी क्षमता के लगभग आधे के बराबर। इसका नतीजा यह हुआ कि 133 ताप बिजलीघर उत्पादन बन्द कर ग्रिड से बाहर हो गये हैं। इसीलिए अक्टूबर में कोयला आयात में 28% और पेट्रोलियम पदार्थों के आयात में 31% की गिरावट आ गयी। बिजली की सबसे अधिक खपत करने वाले कारखाने ठप हो रहे हैं, इसलिए बिजली के खरीदार नहीं हैं। वित्तीय क्षेत्र की हालत खस्ता है।

बैंकों के लाखों करोड़ रुपये पहले ही पूँजीपतियों ने दबा रखे हैं। ऊपर से अनेक बड़ी कम्पनियाँ जिनमें बैंक और बीमा कम्पनियों के लाखों करोड़ रुपये लगे हुए हैं, दिवालिया होने के कगार पर हैं या लगातार भारी घाटे में चल रही हैं। बैंक घोटालों ने बैंकों की कमर तोड़कर रख दी है। रिजर्व बैंक के अनुसार इस वर्ष अप्रैल से सितम्बर के बीच सरकारी बैंकों से 95760.49 करोड़ जालसाज उड़ा ले गये, ऐसा वित्त मंत्री ने 19 नवम्बर को संसद में बताया। कुछ साल पहले तक पूरे बैंकिंग क्षेत्र में सालभर में औसतन 15-20 हजार करोड़ रुपये के फ़ॉड होते थे।

सरकारी उपक्रमों को खोखला करके ताबड़तोड़ बेचने की मुहिम भी तेजी से जारी है। एअर इण्डिया और भारत पेट्रोलियम को मार्च तक बेच डालने की घोषणा वित्त मंत्री ने कर दी है। बीएसएनएल और एमटीएनएल के डेढ़ लाख से अधिक कर्मचारियों को बाहर करने का सुझाव वित्त मंत्रालय ने पहले ही दे दिया था। बीएसएनएल के हजारों कर्मचारियों को वीआरएस दिलवाया जा रहा है। मगर हजारों ठेका कर्मचारी तो सीधे सड़क पर धकेल दिये जायेंगे। रेलवे का निजीकरण तेजी से जारी है। पहली निजी ट्रेन 'तेजस' को दौड़ा दिया गया है और अब 150 ट्रेनों और 50 स्टेशनों को भी निजी हाथों में सौंप देने की तैयारी कर ली गयी है।

निर्यात में लगातार तीसरे महीने 1.1% की गिरावट आयी है। इसके साथ ही, आयात भी घट रहा है। लगातार पाँचवें महीने अक्टूबर में आयात में 16.3% कमी आयी। सबसे ज्यादा जिन वस्तुओं का आयात घटा, वे हैं कोयला (-28%), पेट्रोलियम (-31%), इस्पात (-14%), रसायन (24%), प्लास्टिक सामग्री (-10%), बहुमूल्य नग (-17%)। ये सभी वे वस्तुएँ हैं जो उत्पादन में कच्चे या सहायक माल के काम आती हैं। यानी, घरेलू उत्पादन में गिरावट की वजह से कच्चे माल और ऊर्जा की खपत कम हो रही है। सच्चाई यह है कि कारखाने ठप हो रहे हैं और बेरोजगारी चरम पर जा पहुँची है, काम के बगैर मजदूरों के परिवार दाने-दाने के मोहताज हो गये हैं। मन्दी की आड़ लेकर कम्पनियाँ काम बन्द कर रही हैं और मजदूरों को निकाल रही हैं, जिसका सबसे बड़ा उदाहरण मानेसर का होण्डा मोटरसाइकल कारखाना है जहाँ से 3000 मजदूरों को बाहर कर दिया गया है। हर औद्योगिक क्षेत्र में बेरोजगार मजदूरों की बढ़ती हुई दास्तान सुनने को मिल जायेगी। बेरोजगारी की स्थिति का फ़ायदा उठाकर मालिक और ठेकेदार मजदूरों पर मनमानी शर्तें लाद रहे हैं। कम से कम मजदूरी देकर ज्यादा से ज्यादा काम ले रहे हैं। दफ़्तरों में लगे नौजवानों को भी भयानक शोषण की परिस्थितियों में काम करना पड़ रहा है।

6000-7000 रुपये में 10-10 घण्टे काम कराया जा रहा है। प्राइवेट कम्पनियों में ही नहीं, बल्कि सरकारी विभागों तक में। उपभोक्ता खर्च के आँकड़ों ने वास्तव में इस सच्चाई की पुष्टि ही की है कि गरीब लोग नमक, चीनी, मसाले, दाल, खाद्य तेल जैसी सबसे ज़रूरी खाद्य सामग्री भी नहीं खरीद पा रहे हैं। इसी भयावह स्थिति की पुष्टि अपराध ब्यूरो के आँकड़ों ने भी की है जिसके मुताबिक पिछले एक साल में लगभग 40 हजार दिहाड़ी श्रमिकों, किसानों-खेत मजदूरों ने आत्महत्या की है। छात्रों और बेरोजगार नौजवानों द्वारा हताशा में आत्महत्या की घटनाओं में भी भारी बढ़ोत्तरी हुई है।

शिक्षा-स्वास्थ्य-परिवहन जैसी सारी बुनियादी सुविधाओं को पूरी तरह निजी पूँजीपतियों के हाथों में दे देने की तैयारी चल रही है। देशभर में छात्र शिक्षा को महँगा और आम लोगों की पहुँच से बाहर करने की कोशिशों के खिलाफ़ सड़कों पर हैं। मगर उनकी बात सुनने के बजाय सरकार उनका बर्बर दमन कर रही है और उनके विरुद्ध झूठा प्रचार करने में भोपू मीडिया और भाजपा के आईटी सेल को लगा दिया है।

**बिगड़ते हालात से निपटने के लिए मोदी सरकार और संघ परिवार की यही रणनीति है। अगर लोग विरोध करेंगे, तो उन्हें देशद्रोही, विकास का दुश्मन आदि कहकर दमन का शिकार बनाया जायेगा। उनके पक्ष में कहीं से कोई आवाज़ न उठ सके, इसलिए पूरे देश में आतंक का माहौल पैदा किया जा रहा है।** सरकार के विरोध में बोलने वाले बुद्धिजीवियों और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं को पूरी अंधेरगद्दी के साथ, जेलों में कैद रखा जा रहा है। सारे नियम-क़ानूनों को ठेंगा दिखाकर ज़मानत से इन्कार किया जा रहा है।

दरअसल, **हिन्दुत्व और राष्ट्रवाद के तमाम नारों के बावजूद असलियत यह है कि आर.एस.एस. इस देश में देशी-विदेशी बड़ी पूँजी का बेरोकटोक राज चाहता है। और इसी मक़सद को पूरा करने के वास्ते लोगों को बाँटने-लड़ाने के लिए उसे हिन्दू राष्ट्र का अपना एजेण्डा देश पर थोपना है। यही संघियों के परम गुरु हिटलर का एजेण्डा था और यही इनका भी लक्ष्य है। मोदी सरकार के साढ़े पाँच वर्ष के शासन में यह बिल्कुल साफ़ हो चुका है।** मोदी सरकार की नीतियों ने उस ज्वालामुखी के दहाने की ओर भारतीय समाज के सरकते जाने की रफ़्तार को काफ़ी तेज़ कर दिया है, जिस ओर घिसटने की यात्रा पिछले लगभग तीन दशकों से जारी है। भारतीय पूँजीवाद का आर्थिक संकट ढाँचागत है। यह पूरे सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रहा है। बुर्जुआ जनवाद का राजनीतिक-संवैधानिक

ढाँचा इसके दबाव से चरमरा रहा है।

अभी आये आँकड़े बताते हैं कि टाटा के बनाये चुनावी चन्दे के ट्रस्ट से करीब 90 प्रतिशत चन्दा अकेले भाजपा को मिला। यानी पूँजीपतियों का भारी हिस्सा इतने गम्भीर आर्थिक संकट के बावजूद अभी मोदी सरकार के ही पक्ष में है। इसका क्या कारण है? कारण बिल्कुल साफ़ है। फ़्रासीवाद संकटग्रस्त पूँजीवाद का अन्तिम उपाय होता है, क्योंकि फ़्रासिस्ट सत्ताएँ हर तरह के विरोध को किनारे लगाकर, बुर्जुआ लोकतंत्र के तमाम मुखौटों को उतार फेंककर पूरी बेशर्मी के साथ पूँजीपतियों को जनता को खुलकर लूटने का मौक़ा देती हैं। वे देश के प्राकृतिक संसाधनों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों की बर्बर लूट के लिए उनके हवाले कर देती हैं। मजदूरों के सारे अधिकारों को छीनकर वे उन्हें निहत्था कर देती हैं और झूठे भावनात्मक मुद्दे उभाड़कर लोगों को आपस में बाँटकर उनकी एकजुटता को तोड़ देती हैं। ऐसे में मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से परेशान पूँजीपतियों को संकट से राहत मिल जाती है। अर्थव्यवस्था की इतनी बुरी हालत के बावजूद तमाम पूँजीपति मोदी और आर.एस.एस. के आगे जो नतमस्तक हो रहे हैं, इसका राज यही है।

जैसे-जैसे आर्थिक संकट गहरायेगा, फ़्रासिस्ट सरकार का दमन, धार्मिक नफ़रत फैलाने के हथकण्डे और नकली राष्ट्रवाद के जुमले तेज़ होते जायेंगे। असम द्वारा एनआरसी को खारिज किये जाने के बावजूद अमित शाह ने घोषणा कर दी है कि इसे पूरे देश में लागू किया जायेगा! इसका एकमात्र मक़सद है - अल्पसंख्यकों और राजनीतिक विरोधियों को आतंकित करना। कश्मीर की पूरी आबादी को भयंकर अमानवीय कैद में रखने के साढ़े तीन महीने पूरे हो चुके हैं। पूरी दुनिया में भारी विरोध के बावजूद मोदी सरकार वहाँ दमनचक्र और खबरों के ब्लैकआउट को और तेज़ कर रही है क्योंकि उनके अन्धराष्ट्रवाद के एजेण्डे के लिए यह ज़रूरी है।

मगर इससे हताशा होने की ज़रूरत नहीं। आज ज़रूरत आम मेहनतकश अवाम को जागृत, शिक्षित, एकजुट और संगठित करने की अनवरत, अहर्निश कोशिशों में लग जाने की है। यह समय की माँग है कि फ़्रासिस्टों की बेशर्मा, क्रूर असलियत को लोगों के बीच नंगा किया जाये। उनके पास कॉरपोरेट घरानों का मीडिया है जो दिनों-रात झूठ की बारिश कर रहा है। लेकिन हमारे पास संख्याबल की ताक़त है। बिखरे प्रयासों को एकजुट करने की ज़रूरत है। केवल सोशल मीडिया का सहारा छोड़कर गाँवों-शहरों के आम मेहनतकश गरीबों की झुग्गी-झोंपड़ियों तक जाने और उनके भीतर जाति-धर्म की राजनीति और धार्मिक कट्टरपन्थी फ़्रासिज्म के विरुद्ध

राजनीतिक चेतना पैदा करने के प्रयासों में लग जाने की ज़रूरत है। बेरोजगारी की मार झेल रहे नौजवानों की भारी आबादी के बीच जाकर फ़्रासिस्टों के झूठों को बेनकाब करना होगा। जनता के बीच जाकर उसे सच्चाई बताने के विभिन्न तरीकों से फ़्रासिस्टों के प्रचार के ज़मीनी नेटवर्क का मुक़ाबला करना होगा।

यह सही है कि अभी हम अपने काम में काफ़ी पीछे हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि पहले से ही हथियार डाल दें। यह विकल्प हम नहीं चुन सकते क्योंकि इसका मतलब होगा सभ्यता और मनुष्यता के विनाश पर अपने हाथों से मुहर लगा देना। फ़्रासिस्टों और निरंकुश बुर्जुआ सत्ताओं को अगर अपना खेल खेलने के लिए खुला छोड़ दिया जायेगा तो वे नरसंहारों, दंगों, युद्धों और पर्यावरण-विनाश के द्वारा मनुष्यता को ही तबाह कर देंगे। इसलिए, लड़ना तो होगा ही। और कोई विकल्प नहीं है।

हमें व्यापक जन प्रचार के तरीके अपनाने होंगे, वैकल्पिक जन-मीडिया संगठित करना होगा और हर मोर्चे पर उन अतार्किक, अनैतिहासिक, अवैज्ञानिक विचारों के खिलाफ़ प्रचार चलाना होगा, जिनका इस्तेमाल करके फ़्रासीवादी ताक़तें निराश और पिछड़ी चेतना वाले मध्य वर्ग और मजदूरों के बीच अपना सामाजिक आधार बनाने का काम करती हैं। जिस स्तर पर भी सम्भव हो, प्रगतिशील, सेक्युलर आम मध्यवर्गीय युवाओं और मजदूरों को ऐसे दस्तों में संगठित करने की राह निकालनी होगी, जो तृणमूल स्तर पर लम्पट-असामाजिक-आपराधिक तत्वों और फ़्रासीवादी गुण्डों से निपटने को तैयार हों।

आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फ़्रासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ़ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर गरीबों और मजदूरों के बीच जुझारू संगठन बनाने होंगे। बिखरी हुई मजदूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चौकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फ़्रासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमखम रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मजदूर वर्ग की फ़ौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फ़्रासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। मगर इसके लिए हमें अपनी भरपूर ताक़त के साथ तैयारी में जुटना होगा।



# अयोध्या फ़ैसला : क़ानून नहीं, आस्था के नाम पर बहुसंख्यकवाद की जीत

## मेहनतकशों का नज़रिया क्या हो?

जब सुप्रीम कोर्ट ने अचानक अयोध्या मामले की रोज़ाना सुनवाई करना शुरू किया था तभी से यह लगने लगा था कि फ़ैसला किस तरह का होने वाला है। न्यायपालिका पिछले कुछ वर्षों में जिस तरह से मोदी सरकार की चाकर की तरह के रूप में काम कर रही है, उसे देखते हुए भी समझदार लोगों को किसी निष्पक्ष फ़ैसले की उम्मीद नहीं थी। भाजपा के कुछ अति-उत्साही नेता तो पहले ही बोलने लगे थे कि सुप्रीम कोर्ट “हमारा है” इसलिए फ़ैसला “हमारे पक्ष” में ही आयेगा।

अब कुछ लोग कह रहे हैं कि इस फ़ैसले को सभी को स्वीकार कर लेना चाहिए और बीती बातों को भुलाकर आगे बढ़ना चाहिए। मगर वे भूल रहे हैं कि दरअसल यह आस्था का मामला है ही नहीं! राम मन्दिर शुरू से ही राजनीति का मसला रहा है और आज भी है। 1992 में बाबरी मस्जिद ढहाने के समय नारे लगाये गये थे कि “अभी तो बस ये झाँकी है, मथुरा-काशी बाकी है।” अब इस फ़ैसले के बाद ही जामा मस्जिद से लेकर ताज़ महल तक के नीचे हिन्दू मन्दिर होने की बातें भाजपाइयों की ओर से उछाली जाने लगी हैं। वाराणसी में सैकड़ों मन्दिरों और मकानों को तोड़कर जो गलियारा बनाया गया है उस पर भी कई लोगों ने सवाल उठाया है कि इसके ज़रिये विश्वनाथ मन्दिर-ज्ञानवापी मस्जिद तक पहुँचने का रास्ता साफ़ कर दिया गया है ताकि भविष्य में कभी इसका इस्तेमाल संघियों के गन्दे इरादों के लिए किया जा सके। ऐसे माहौल में सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले ने बहुसंख्यकों की आस्था के नाम पर गुण्डागर्दी पर मुहर लगाने का काम किया है। एक तरह से अदालत ने कह दिया है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस और भविष्य के लिए एक ख़तरनाक मिसाल क़ायम कर दी है।

सवाल यह भी पूछा जाना चाहिए कि आज आनन-फ़ानन में यह फ़ैसला क्यों लाया गया है। थोड़ा ध्यान से सोचें तो आपको याद आ जायेगा कि जब-जब मन्दिर विवाद को भड़काया गया है, तब-तब देश किसी न किसी राजनीतिक या आर्थिक संकट का शिकार था। 1949 में जब कुछ साम्प्रदायिक तत्वों ने बाबरी मस्जिद के गुम्बद के नीचे राम की मूर्तियाँ रख दी थीं, उस समय आज़ादी के बाद देश की पूँजीवादी सत्ता अभी स्थिरीकरण की प्रक्रिया में थी और देश के कई हिस्सों में किसान संघर्ष चल रहे थे। देश दरिद्रता की स्थिति में था। दूसरी ओर, आरएसएस गाँधी की हत्या के बाद बुरी तरह अलग-थलग पड़ चुका था और हिन्दुओं में पैठ बनाने की कोशिशों में लगा हुआ था। 1986 में जब मस्जिद का ताला खुलवाया गया और बाद में शिलान्यास हुआ तब भी देश घोर आर्थिक संकट से गुज़र रहा था; बेरोज़गारी भयंकर रूप अख़्तियार कर चुकी थी, मुद्रास्फीति का हाल बुरा था और विदेशी कर्ज़ से

देश की अर्थव्यवस्था चरमरा रही थी। फिर 1990 के दशक की शुरुआत में जब मन्दिर का मुद्दा उछाला गया तो देश की अर्थव्यवस्था डावाँडोल थी; देश का सोना गिरवी रखा जा चुका था; महँगाई आसमान छू रही थी; बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार और गरीबी से देश की जनता में भयंकर गुस्सा था।

ये सारे मौक़े ऐसे थे, जिसमें शासक वर्गों को इस बात की दरकार थी कि जनता का ध्यान उन वास्तविक मुद्दों से हट जाये जिनका उसकी ज़िन्दगी पर असर पड़ता है। इसके लिए धार्मिक उन्माद के कार्ड का अलग-अलग समय पर इस्तेमाल किया गया। कहने की ज़रूरत नहीं कि आज फिर देश ऐसी ही परिस्थिति से गुज़र रहा है। अर्थव्यवस्था अभूतपूर्व संकट की गिरफ़्त में है। बेरोज़गारी और महँगाई चरम पर हैं। उद्योग, व्यापार, खेती सब संकट में हैं। देशभर में छात्र-युवा, मज़दूर, किसान, कर्मचारी सभी आन्दोलन की राह पर हैं। आबादी के उन तबकों पर भी अब आर्थिक संकट की मार पड़ रही है जो मोदी के समर्थक रहे हैं और उनका धैर्य जवाब दे रहा है। किसी भी समस्या का वास्तविक जवाब इस सरकार के पास नहीं है। उल्टे, यह दोनों हाथों से देश की सम्पदा देशी-विदेशी लुटेरों पूँजीपतियों के हवाले करने में लगी हुई है। घोटालों और भ्रष्टाचार के रिकॉर्ड टूट रहे हैं। भोपू मीडिया के ज़रिये दिनो-रात जारी झूठे प्रचार से लोगों को हमेशा बेवकूफ़ बनाये रखा जा सकता है, इस पर संघियों को अब ख़ुद भी भरोसा नहीं रह गया है। ऐसे में मन्दिर का यह फ़ैसला उनके हाथों में फिर से एक हथियार होगा जिसके ज़रिये वे कुछ और सालों तक लोगों को भरमाये रख सकते हैं, ऐसा उनका सोचना है। उन्हें लगता है कि कभी मन्दिर निर्माण का ट्रस्ट बनाकर, कभी इसका भव्य शिलान्यास करके तो कभी मन्दिर निर्माण शुरू करवाकर वे अगले कुछ वर्षों तक इसकी फ़सल काट सकते हैं और अगला आम चुनाव भी जीत सकते हैं। मगर ज़रूरी नहीं कि संघियों की यह सोच कामयाब ही हो।

### फ़ैसले का सर्वहारा विश्लेषण

अब इस फ़ैसले पर भी एक निगाह डाल ली जाये। इस फ़ैसले पर पूँजीवादी मीडिया लोटपोट हो गया है। वह इसे लोकतंत्र की विजय बता रहा है। जाहिर है, पूँजीवादी मीडिया अपना फ़र्ज़ अदा कर रहा है – पूँजीवादी के पक्ष में जनता की आम राय बना रहा है। अब यह एक दीगर बात है कि वह जो बोल रहा है, सच्चाई उसके बिल्कुल विपरीत है!

तथ्य यह है कि बुर्जुआ क़ानून और संविधान के तमाम उसूलों को ताक पर रखकर सुप्रीम कोर्ट ने “बहुसंख्यक हिन्दुओं की भावनाओं” का ध्यान रखकर यह फ़ैसला दिया है। और तो और, अपने ही फ़ैसले में सुप्रीम कोर्ट ने मूर्तियाँ रखी जाने, बाबरी मस्जिद गिराये जाने, पुरातात्विक साक्ष्यों आदि के बारे

में जो बातें कही हैं, उनके भी विपरीत जाकर ऐसा फ़ैसला दिया है जिसे क़ानून के नज़रिये से किसी भी तरह सही ठहराया ही नहीं जा सकता।

जैसा कि सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जज न्यायमूर्ति अशोक गांगुली ने कहा है कि संविधान के लागू होने के पहले वहाँ क्या था, यह सुप्रीम कोर्ट की ज़िम्मेदारी नहीं है। जब वह इमारत बनी तब भारत कोई लोकतांत्रिक गणतंत्र नहीं था। तब वहाँ एक मस्जिद थी, एक मन्दिर था, एक बौद्ध स्तूप था, या कुछ और था। अगर हम इस तरह अतीत के सवालों पर फ़ैसला देंगे तो बहुत सारे मन्दिर, मस्जिदें और अन्य ढाँचों को तोड़ना पड़ेगा। हम पौराणिक तथ्यों पर नहीं जा सकते। राम कौन थे? क्या किसी तरह का ऐतिहासिक साक्ष्य है? यह आस्था और विश्वास का मामला है। इन पर अदालत के फ़ैसले नहीं हुआ करते।

न्यायमूर्ति गांगुली के ही अनुसार, “सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि आस्था और विश्वास के आधार पर आपको कोई प्राथमिकता नहीं मिल सकती। वे कह रहे हैं कि मस्जिद के नीचे कोई ढाँचा था लेकिन ढाँचा मन्दिर का था, यह निश्चित नहीं। आज कोई नहीं कह सकता कि मन्दिर को ही ढहाकर मस्जिद बनायी गयी, लेकिन अब मस्जिद को ढहाकर मन्दिर बनाया जायेगा, इसे सभी देखेंगे।”

यह फ़ैसला कितना अजीबो-गरीब है इसे कुछ उदाहरणों से देखा जा सकता है। अपने फ़ैसले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि बाबरी मस्जिद 1528 में बनी थी। भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण (ए.एस.आई.) की 2002-03 की रिपोर्ट के हवाले से अदालत ने यह भी कहा कि कहीं भी यह साबित नहीं होता कि बाबरी मस्जिद किसी मन्दिर को तोड़कर बनायी गयी थी। कोर्ट ने यह भी कहा कि 1934 में मस्जिद को क्षतिग्रस्त किया गया। यह भी माना कि 1949 में मस्जिद में कुछ लोगों ने मूर्ति रखकर गैर-क़ानूनी काम किया। फिर यह भी कहा कि 1992 में मस्जिद को ढहाया जाना ग़लत था! फ़ैसले के पैरा 798 में कहा गया कि “मुसलमानों को पूजा और उस स्थल पर अधिकार से बहिष्कृत करने का काम 22-23 दिसम्बर 1949 की रात को हुआ जब हिन्दू मूर्तियाँ रखकर मस्जिद को अपवित्र कर दिया गया। मुसलमानों को वहाँ से बाहर किया जाना किसी क़ानूनी प्राधिकार के ज़रिये नहीं हुआ, और उन्हें एक ऐसी मस्जिद से ग़लत ढंग से वंचित कर दिया गया जिसका निर्माण 450 वर्ष से भी ज़्यादा पहले हुआ था।”

सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि 1885 में राम चबूतरा को असली जन्मस्थान माना गया था। यह भी माना कि 1857 में भीतरी और बाहरी परिसर को अंग्रेज़ों ने दीवार बनाकर अलग-अलग कर दिया था। भीतरी परिसर में मस्जिद प्रबन्धन का क़ब्ज़ा और अधिकार था। राम चबूतरा बाहरी परिसर में है। अदालत ने यह भी माना कि राम चबूतरा पर मन्दिर

बनाने के दावे को 1885 में अदालत ने ख़ारिज कर दिया था। यह भी कहा कि 1992 में मस्जिद तोड़ने वालों ने राम चबूतरा को भी तोड़ दिया था।

ए.एस.आई. ने अदालत को 574 पेज की रिपोर्ट सौंपी थी। अयोध्या में खुदाई करने वाले पुरातत्वविदों के बीच कभी सर्वसम्मति नहीं बन पायी। इसीलिए कई तरह के दावे किये गये हैं। कुछ ने कहा कि मन्दिर के नीचे का अवशेष ‘पुराना ईदगाह’ है, कुछ ने उसे बौद्ध और जैन प्रतीक करार दिया। खुदाई करने वाली टीम का अवलोकन करने वाली दो सदस्य सुप्रिया वर्मा और जया मेनन ने हाई कोर्ट में कहा था कि कुछ प्रतीकों को ‘हिन्दू प्रतीक’ कहा जा रहा है, जबकि ये बौद्ध, जैन या इस्लामिक ढाँचे भी हो सकते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फ़ैसले में ए.एस.आई. की उसी रिपोर्ट का हवाला देते हुए कह दिया कि ज़मीन के नीचे का अवशेष ‘हिन्दू अवशेष’ है। हालाँकि अदालत ने भी यह नहीं कहा कि वह राम मन्दिर के अवशेष हैं।

इतनी बातों के बाद भी मस्जिद की जगह मन्दिर बनाने के लिए देने का फ़ैसला केवल इस आधार पर दिया गया कि बहुसंख्यक हिन्दू मानते हैं कि वह राम का जन्मस्थान है! वैसे, पूछा यह भी जाना चाहिए कि अदालत ने कौन-से सर्वेक्षण से यह पता लगाया कि बहुसंख्यक हिन्दू यही मानते हैं। क्या उसने भाजपा और संघ की राय को ही बहुसंख्यक हिन्दुओं का विश्वास मान लिया? फ़ैसले में यह भी कहा गया कि चूँकि मस्जिद को ग़लत ढंग से गिराकर मुसलमानों के साथ अन्याय हुआ इसलिए उन्हें थोड़ी दूरी पर पाँच एकड़ ज़मीन मस्जिद बनाने के लिए दे दी जाये। क़ानून के नज़रिये से यह ऐसा ही हुआ कि कोई ज़बरन किसी के घर को ढहा दे और अदालत कहे कि घर को गिराना ग़लत था मगर चूँकि गिराने वालों का विश्वास था कि यह उन्हीं का घर है इसलिए अब उस ज़मीन पर वे अपना घर बनायेंगे और उस घर के पुराने बाशिन्दों को कहीं और जगह दे दी जायेगी। अगर क़ानून के बजाय ऐसी दादागिरी से समाज चलने लगे तो सोचा जा सकता है कि अन्जाम क्या होगा!

### हमारा दृष्टिकोण क्या हो?

जहाँ तक मेहनतकश वर्ग के सही दृष्टिकोण का सवाल है, हमें इसके जाल में फँसना ही नहीं चाहिए कि राम थे या नहीं? अगर थे तो उनका ठीक-ठीक जन्मस्थल कहाँ है? बाबरी मस्जिद मन्दिर को तोड़कर बनी थी या नहीं? क्योंकि ऐसे सवाल वास्तव में सवाल हैं ही नहीं। अगर इनको सवाल माना जाये तो हिन्दू साम्प्रदायिक ताकतों के तर्कों पर भी सवाल खड़े किये जा सकते हैं। तमाम हिन्दू मन्दिर बौद्ध पूजा-स्थलों को तोड़कर बनाये गये। ऐतिहासिक प्रमाण बताते हैं कि अयोध्या में ही ऐसे तमाम मन्दिर मौजूद हैं जो बौद्धों का नरसंहार

करके और फिर उनके मठों को तोड़कर बनाये गये। तो क्या अब उन मन्दिरों को तोड़कर फिर से बौद्ध मठ बनाये जाने चाहिए? अयोध्या में ही ऐसे कम से कम एक दर्जन और भी मन्दिर हैं जो यह दावा करते हैं कि वास्तव में वहीं राम का जन्मस्थल है। उनका क्या होगा? ऐसी और भी मस्जिदें हैं जो शायद हिन्दू या दूसरे धर्मस्थलों को तोड़कर या उनके अवशेष पर बनीं। तो क्या उन सबको तोड़कर वहाँ फिर से मन्दिर बनाये जायें? मध्यकाल में यह आम बात थी। जब राज्य का आधार ही धर्म था, तो हर राजा अपने साम्राज्य को स्थापित करने के लिए अपने धर्म को भी स्थापित करवाना ज़रूरी समझता था। पूरी दुनिया में उस काल में धर्मस्थल तोड़े गये। मगर इतिहास के पहिये को उल्टा घुमाने की ऐसी कोशिश कहीं नहीं हुई।

सवाल वास्तव में यह है ही नहीं। इतिहास में पहले जो घटनाएँ घटित हुईं उनका हिसाब वर्तमान में चुकता नहीं किया जा सकता और न किया जाना चाहिए। इतिहास को पीछे नहीं ले जाया जा सकता और न ले जाया जाना चाहिए। आज का ज़िन्दा सवाल यह है ही नहीं। जिस देश में तीन-चौथाई से भी ज़्यादा आबादी भयंकर गरीबी में जीती हो, जहाँ के बच्चों की आधी आबादी कुपोषित हो; जहाँ 30 करोड़ बेरोज़गार सड़कों पर हों; जहाँ एक चौथाई आबादी बेघर हो या झुग्गियों में ज़िन्दगी बिता रही हो, जहाँ के 60 करोड़ मज़दूर अमानवीय हालात में जीने और हाड़ गलाने पर मजबूर हों, और जहाँ समाज घृणित धार्मिक-जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न और स्त्रियों के बर्बर उत्पीड़न के दंश को झेल रहा हो, वहाँ मन्दिर और मस्जिद का सवाल प्रमुख कैसे हो सकता है? वहाँ इतिहास के सैकड़ों वर्ष पहले हुए अन्याय का बदला लेना मुद्दा कैसे हो सकता है, जबकि वर्तमान समाज में अन्याय और शोषण के भयंकरतम रूप मौजूद हों?

और अगर यह मुद्दा है तो हर उस स्थान के इतिहास को पीछे जाकर देखा जाना चाहिए जहाँ आज कोई मन्दिर या मस्जिद है। उसी जगह पर न जाने उससे पहले कितने क्रिस्म के धर्मस्थल रहे होंगे। आप किस-किसको तोड़ेंगे और किस-किसको बनायेंगे? इस मामले पर ज़रा-सा तार्किक विचार करते ही स्पष्ट हो जाता है कि यह कितना निरर्थक, पीछे ले जाने वाला और प्रतिक्रियावादी है। इतिहास को पीछे ले जाने वाली ताकतें ही आज इसका इस्तेमाल कर रही हैं और जनता के पिछड़ेपन का और वर्ग चेतना के अभाव का लाभ उठाकर उसे इन मुद्दों से भरमा रही हैं। उनकी दिलचस्पी आज गरीब मेहनतकश आबादी के साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ़ लड़ने में नहीं है जो वास्तव में इतिहास को आगे ले जाता। उनकी दिलचस्पी सुदूर अतीत में हुए किसी ऐसे अन्याय के खिलाफ़ (पेज 11 पर जारी)



## जेएनयू में सफ़ाई मज़दूरों की हड़ताल : एक रिपोर्ट

देश के अन्य केन्द्रीय संस्थानों की तरह जेएनयू में भी ठेका मज़दूरों की बड़ी आबादी काम कर रही है। विश्वविद्यालय में सफ़ाई, मेस (रसोई), कंप्यूटर, पुस्तकालयों, कार्यालयों और गार्ड व चपरासी आदि का काम करने वाले मज़दूर व कर्मचारी ठेके पर रखे गये हैं। इन कामों के लिए हालाँकि कुछ स्थायी कर्मचारी भी हैं लेकिन उनकी जगह अब ठेके पर मज़दूर लिये जा रहे हैं। ये ठेका मज़दूर लम्बे समय से काम करते रहे हैं। यहाँ समय-समय पर ठेकेदार या कॉन्ट्रैक्टर तो बदलते रहे हैं लेकिन मज़दूर वही होते हैं। कई ठेका मज़दूर ऐसे हैं जो 20 सालों से जेएनयू में काम कर रहे हैं। आने वाले सभी नये कॉन्ट्रैक्टर उन्हीं मज़दूरों को काम पर लेते रहे हैं। जेएनयू में आवासीय परिसर भी है जिसकी वजह से छात्रों, शिक्षकों और मज़दूरों के बीच क़रीबी का रिश्ता रहा है। मज़दूरों के काम के घण्टे और न्यूनतम व नियमित मज़दूरी सुनिश्चित कराने के हक़ में छात्र और शिक्षक समय-समय पर आवाज़ उठाते रहे हैं। इसलिए इन्हें न्यूनतम मज़दूरी तो मिलती ही रही है काम के घण्टे भी निश्चित रहे हैं। पर इसके साथ ही इन्हें स्थायी बनाने के पक्ष में भी हमें अपनी आवाज़ उठानी चाहिए थी।

2016 के बाद पूरी तरह संघ के इशारों पर नाचने वाले जगदेश कुमार मामीडाला के जेएनयू में उपकुलपति का पद संभालने के बाद यहाँ काम करनेवाले मज़दूरों की स्थिति बदतर हुई है। विश्वविद्यालय में माले लिबरेशन की मज़दूर यूनियन एकटू की मौजूदगी के बावजूद मज़दूर बदहाल हैं। उनकी छँटनी हो रही है, उनपर काम का अत्यधिक दबाव है, ज़रा सी गलती हुई नहीं कि ठेकेदार उन्हें मेमो थमा देता है, गाली-गलौज करता है, मनमाने तरीक़े से काम से निकाल देता है और इन ज्यादतियों की कहीं कोई सुनवाई नहीं होती। इतना ही नहीं मज़दूरों के ईएसआई और पीएफ़ के पैसे में घपला किया जाता है। कॉन्ट्रैक्टर अपने खाते में जमा इन पैसे पर अपना अधिकार मानता है।

जेएनयू में अलग-अलग क्षेत्रों के लिए

अलग-अलग कॉन्ट्रैक्टर हैं, जैसे हॉस्टलों में सफ़ाई का कॉन्ट्रैक्ट अभी मैक्स कम्पनी को मिला है, मेस में बालाजी और सुरक्षाकर्मियों के काम के लिए साइक्लोप्स आदि को। अध्यापन क्षेत्र (जहाँ कक्षाएँ चलती हैं) और प्रशासनिक क्षेत्र की सफ़ाई का काम नयी कॉन्ट्रैक्टर कम्पनी सुदर्शन फ़ैसिलिटी प्राइवेट लिमिटेड ने 1 मार्च से संभाला और ठीक उसी दिन से उसने मज़दूरों की नाक में दम कर दिया है। उनके साथ मनमाने ढंग से व्यवहार के अलावा जो सबसे भयंकर काम सुदर्शन ठेकेदार कम्पनी करती थी वह था मज़दूरों की हाज़िरी के साथ धाँधली करना। मज़दूर जब सुबह काम पर आते तो हाज़िरी रजिस्टर पर उनकी उपस्थिति पेंसिल से लगायी जाती। काम समाप्त होने पर शाम को ही जाकर पेन से उनकी पक्की हाज़िरी दर्ज होती। इस प्रकार सारा दिन ये मज़दूर नहीं बल्कि उनकी परछाईं काम कर रही होती। मतलब साफ़ है, काम के दौरान अगर किसी मज़दूर को कुछ हो जाये, कोई दुर्घटना घट जाये तो कॉन्ट्रैक्टर आसानी से पेंसिल से लगी हाज़िरी मिटाकर यह दिखा सकता है कि दुर्घटना के समय वह मज़दूर काम पर मौजूद था ही नहीं, और दुर्घटना काम के दौरान हुई ही नहीं। इस प्रकार वह मज़दूर के दवा-इलाज और हर तरह की ज़िम्मेदारी से अपना पल्ला झाड़कर आराम से निकल जायेगा। यँ भी कोई ठेकेदार कम्पनी या ठेकेदार बिना मज़दूरों के दबाव के ऐसी कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेते। मज़दूरों के दबाव के आगे ही उन्हें कुछ झुकने को मजबूर होना पड़ता है। ऐसी मनमानी से अब वे इससे भी असानी से बच निकलेंगे। कक्षाओंवाले इलाक़े में काम करने वाले मज़दूरों को जोखिमपूर्ण स्थिति में काम करना पड़ता है, उन्हें ऊँची-ऊँची दीवारों और खिड़कियों की सफ़ाई करना, ऊँचाई पर लगे पोस्टर हटाना और शीशों आदि की सफ़ाई का काम बिना किसी सुरक्षा उपकरण के करना होता है, यहाँ तक कि उन्हें दस्ताने, गम-बूट या झाड़न तक नहीं दिये जाते। इसके अलावा उन्हें ऐसे काम भी करने पड़ते हैं जो इनके कार्यक्षेत्र में नहीं

आते, जैसे लॉन की घास और झाड़ियाँ काटना आदि। काम पर एक मिनट भी देर से आने पर आधे दिन की हाज़िरी काट लेना, निर्धारित कामों से ज़्यादा देने के खिलाफ़ आवाज़ उठाने पर पूरे दिन की हाज़िरी काट लेना, बात-बात पर मेमो देना और तीन मेमो के बाद नौकरी से निकाल देना जैसी बातें यहाँ आम है। इस तरह सुदर्शन कम्पनी ने पिछले 8 महीनों में मनमाने तरीक़े से 12 मज़दूरों को बाहर का रास्ता दिखा दिया है। हद तो तब हो गयी जब दिवाली पर मज़दूरों को मिलनेवाला नियमित बोनस देने से भी इस ठेकेदार कम्पनी ने इन्कार कर दिया। इस अन्याय और ज्यादतियों के खिलाफ़ मज़दूरों ने एकजुट होकर आवाज़ उठायी।

पिछले एक महीने से हम इन मज़दूरों के बीच जा रहे थे और मीटिंगें कर रहे थे। जेएनयू में काम करने वाले दूसरे मज़दूरों, मेस, माली, कूड़ा उठाने वाले और हॉस्टलों में सफ़ाई करने वालों के बीच कई बैठकें कीं और बातचीत का सिलसिला चलाया। सुदर्शन कम्पनी के तहत काम करनेवाले मज़दूरों ने हड़ताल पर जाने का निर्णय लिया। इसकी सूचना जेएनयू के सभी संगठनों को भी दे दी गयी। लेकिन बहुत कम संगठनों ने ही सक्रिय भागीदारी करने में रुचि दिखायी। प्रमुख वाम संगठन – आइसा, एसएफ़आई, डीएसएफ़ इस मामले को लेकर उदासीन बने रहे। लिबरेशन की मज़दूर यूनियन एकटू जबकि इन्हीं मज़दूरों के बीच चार-पाँच सालों से काम कर रहा है इस मसले पर मज़दूरों को संगठित करने या साथ तक देने की बात तो दूर, बार-बार फ़ोन करने और बुलाने पर भी उसके किसी प्रतिनिधि ने कोई हिस्सेदारी नहीं की। उल्टे इस आन्दोलन की पीठ में उसने छुरा घोंपने का काम किया। हड़ताल के दौरान एकटू के कुछ लोग मज़दूरों से मिलने आये और इसका समर्थन कर रहे छात्र समूह और संगठन के बारे में अनाप-शनाप बातें कीं, उनके खिलाफ़ यह कहते हुए भड़काया कि वे समूह और संगठन अपनी राजनीति करने के लिए मज़दूरों का इस्तेमाल कर रहे हैं। उन्होंने मज़दूरों को उकसाया कि इस तरह बैठने से कुछ

हासिल नहीं होगा, उन्हें जाकर प्रशासनिक भवन को घेर लेना चाहिए, रास्ता जाम कर देना चाहिए आदि आदि। इस तरह की भड़काऊ बातों और आत्मघाती सलाहों से 170 मज़दूरों में से कुछ मज़दूर छिटक गये। जब उन्होंने देखा कि खुद एकटू के 'नेता' काम पर जाकर हाज़िरी लगा रहे हैं तो सन्देह और अनिश्चय की स्थिति उनपर हावी हो गयी और 30 से अधिक मज़दूर कमज़ोर पड़ गये। इसका नतीजा यह निकला कि चार दिनों तक जिन मज़दूरों ने हड़ताल के लिए कमर कस रखी थी वे पाँचवें दिन से ढीले पड़ने लगे और एक-एक करके काम पर लौटने लगे। इन सफ़ाई मज़दूरों में लगभग सभी दलित पृष्ठभूमि से हैं लेकिन दलितों की आवाज़ होने का दावा करनेवाली बापसा ने भी बस नाम के लिए अपने एक या दो कार्यकर्ताओं को हड़ताल स्थल पर भेजने के अलावा कोई सक्रिय भागीदारी नहीं की। अस्मितावादी राजनीति करने वालों से हम भला और उम्मीद ही क्या कर सकते हैं?

हड़ताल टूटने की वजह मात्र यही नहीं थी, हालाँकि इस तरह की उकसावेबाज़ी ने इसे नुकसान पहुँचाया। किसी भी आन्दोलन को मज़बूती लोगों की बढ़ती भागीदारी से मिलती है। आइसा, एसएफ़आई, डीएसएफ़ या बापसा जैसे छात्र संगठन जो संख्याबल के लिहाज़ से बड़े थे मज़दूरों के पक्ष में आम छात्रों का समर्थन जुटाने के प्रति पूरी तरह से उदासीन थे। इनकी पार्टी से जुड़ी ट्रेड यूनियन की समझौतापरस्त नीति दिन के उजाले की तरह साफ़ होकर सामने आ गयी थी। सीपीएम और सीपीआई की घुटनाटेकू नीति ने भी मज़दूरों को भरमाने का काम किया। अपने हक़ के लिए लड़नेवाले मज़दूरों से कोई बिल्कुल शुरुआती दौर में ही घेराव करने और सड़क जाम करने जैसे आन्दोलन के उच्चतम फ़ॉर्म का परामर्श देता है, तो कोई एक क़दम पीछे हटने की सलाह देने लगता है। कुछ संगठन अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी भी थे जो मज़दूरों के पीछे चलने में विश्वास रखते थे और सबकुछ खुद मज़दूरों द्वारा तय किये जाने

के पक्ष में थे। इन सारी बातों का नतीजा यह हुआ कि मज़दूरों ने भी यह महसूस कर लिया कि उनसे समझदार और इस हड़ताल में उनका साथ और सलाह देनेवाले छात्रों में ही आपसी तालमेल नहीं है। इसने भी आन्दोलन को कमज़ोर करने में एक भूमिका निभायी।

दूसरे, मज़दूरों को यह विश्वास था कि हड़ताल पर जाने के बाद प्रशासन उनकी बात सुनेगा। लेकिन प्रशासन जब संघ के साथे तले काम कर रहा हो तो उसे भला किस बात का डर। लिहाज़ा मज़दूरों की बात तो सुनी नहीं गयी उल्टे उसका कोई अदना सा अधिकारी रोज़ आकर धमकी ज़रूर दे जाता था। सुदर्शन कम्पनी का जी.एम., डोगरा भी धमकाने आया और उसने अपमानजनक तरीक़े से अपनी बात शुरू की लेकिन मज़दूरों की ताक़त और समर्थक छात्रों की उपस्थिति के आगे उसे बातों में नरमी बरतनी पड़ी। हालाँकि उसने उनकी एक भी माँग नहीं मानी। जेएनयू प्रमुख नियोक्ता होने के कारण बोनस और अन्य ज़िम्मेदारियों से बच नहीं सकता। क्रान्ती तौर पर बोनस प्रमुख नियोक्ता की ज़िम्मेदारी होती है। लेकिन सुदर्शन कम्पनी और जेएनयू प्रशासन बोनस की ज़िम्मेदारी एक दूसरे पर डालते रहे और अन्त में दोनों ने ही पल्ला झाड़ लिया। मज़दूर इस लीपापोती को समझ चुके थे।

हण्ड्रेड फ़्लॉवरर्स ग्रुप का लगातर इस बात पर जोर था कि व्यापक छात्र आबादी और परिसर के अन्य ठेका मज़दूरों से सम्पर्क करके उन्हें आन्दोलन से जोड़ने का प्रयास किया जाये। इस तरह की कोई भी माँग मनवाने के लिए व्यापक जेएनयू समुदाय का साथ होना ज़रूरी था। ऐसा नहीं हो पाने की स्थिति में प्रशासन ने भी आन्दोलन की क्षमता का मूल्यांकन कर लिया और हाज़िरी के दो रजिस्टर रखने, काम से किसी को न निकालने और मेमो आदि पर रोक लगाने का मौखिक आश्वासन भर देकर छुट्टी पा ली। मज़दूरों के न बोनस और न ही हड़ताल के चार दिनों की हाज़िरी की बात मानी गयी।

– बिगुल संवाददाता

## महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के सुरक्षा कर्मियों की एक दिन की हड़ताल

ठेका कम्पनी ईगल हण्टर मार रही कर्मियों का हक़ और मदवि प्रशासन का मौन समर्थन !

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के सुरक्षा कर्मियों (सिक्युरिटी गार्ड) 26 अक्टूबर को हड़ताल पर रहे। सुरक्षा कर्मियों अपने रुके हुए एरियर और तय वेतनमान की माँग कर रहे थे। मदवि के सुरक्षा कर्मियों बेहद कठिन हालात में काम करते हैं। तपती लू हो या कड़कड़ाती ठण्ड हो, बरसात हो या हो आँधी-तूफ़ान सुरक्षा कर्मियों अपने काम में मुस्तैदी से डटे रहते हैं। यही नहीं थोड़े से वेतन में जान जोखिम में डालकर भी सुरक्षा कर्मियों कम्पनी की नौकरशाही और विश्वविद्यालय के सुरक्षा अधिकारियों की डाँट-डपट भी सुनते हैं। ईगल हण्टर नामक ठेकेदार कम्पनी ने मदवि में जून 2017 में सुरक्षा का टेण्डर लिया था। उस समय सुरक्षा कर्मियों को 10,200 रुपये वेतन मिल रहा था जबकि मार्च 2017 के हरियाणा सरकार के आदेशानुसार डीसी रेट के हिसाब से वेतन 11,700 रुपये

होना चाहिए था। किन्तु यह 11,700 वेतन कर्मियों को मिला फ़रवरी 2018 में। अगले ही महीने नये डीसी रेट के अनुसार वेतन हो गया 12,700 रुपये लेकिन यह बढ़ा हुआ वेतन भी कर्मियों को फ़रवरी 2019 में मिलना शुरू हुआ। मार्च 2019 में डीसी रेट हो गया 13,850 रुपये किन्तु श्रमिकों को अब भी मिल रहे हैं 12,700 रुपये ही। ईगल हण्टर कम्पनी के बही खाते एक वर्ष पीछे चल रहे हैं तथा सुरक्षा कर्मियों को पिछले 38 महीने से ही तय वेतन से कम वेतन दिया जा रहा है। हरेक कर्मियों के तक्ररीबन 50,000 रुपये दबाकर कम्पनी बैठी है। सुरक्षा कर्मियों के खून-पसीने पर पलने वाले कम्पनी के अफ़सर और मालिक मोटे होते जा रहे हैं, दूसरी ओर सुरक्षा कर्मियों आठ-आठ घण्टे खड़े रहकर भी न्यूनतम वेतन तक को तरस रहे हैं।

भले ही ठेकेदार कम्पनी बीच में हो

किन्तु विश्वविद्यालय प्रशासन प्रधान नियोक्ता होने के कारण अपनी ज़िम्मेदारी से बच नहीं सकता। क्यों इतने बड़े घोटाले की कारगुजारी के प्रति विश्वविद्यालय प्रशासन सूचना होने के बावजूद गुँगा-बहरा बना हुआ है? कहीं कोई मिलीभगत तो नहीं है? देश के भविष्य निर्माण के ठेकेदार बनने वाले वीसी, रजिस्ट्रार और सुरक्षा अधिकारियों से क्या यह मामला छुपा हुआ था? पिछले 2 साल से कर्मियों तय वेतनमान और एरियर की माँग उठा रहे हैं किन्तु यूनियनवादी प्रशासन सारी ज़िम्मेदारी कम्पनी पर डालकर घोड़े बेचकर सो रहा है। पिछले दिनों छात्र संगठन भी वीसी से इस सम्बन्ध में मिले थे लेकिन वीसी महोदय का आश्वासन जुमला साबित हुआ। इस अंधेरे की ख़िलाफ़ सड़क पर उतरे सुरक्षा कर्मियों को दिशा छात्र संगठन समेत विभिन्न छात्रों और कर्मचारियों के संगठनों ने

अपना समर्थन दिया।

**जानलेवा ठेकेदारी प्रथा मतलब श्रमिकों की क्रान्ती लूट**

विश्वविद्यालय में निजी कम्पनी के तहत कार्यरत सुरक्षा कर्मचारियों का (बढ़ा हुआ) एरियर पिछले ढाई सालों से नहीं मिल रहा है। डीसी रेट का नया वेतनमान भी महीनों बाद विश्वविद्यालय में लागू होता है जैसे नये वेतन की चिट्ठी महीनों बाद कैम्पस में पहुँचती हो। सुरक्षा कर्मचारी बेहद कम वेतन के साथ विश्वविद्यालय में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। जैसाकि भारत सरकार का 1970 का श्रम क्रान्ति कहता है कि स्थायी प्रकृति के काम पर नौकरी भी स्थायी होनी चाहिए, उस हिसाब से होना तो यह चाहिए कि विश्वविद्यालय के सभी सुरक्षा कर्मचारियों को पक्का करे, किन्तु यहाँ तो उनका एरियर तक रोक लिया जा

रहा है। क्या यह श्रम क्रान्ति का ज़ाज़ों की शोभा बढ़ाने के लिए ही है? वैसे सुप्रीम कोर्ट का निर्देश यह भी है कि समान काम का समान वेतन मिलना चाहिए, किन्तु यह निर्देश भी सिवाय जुमले के कुछ नहीं है। यदि वास्तव में ही सुप्रीम कोर्ट समान काम के समान वेतन के प्रति गम्भीर है तो क्या इस निर्देश की अवहेलना करने वालों की जगह जेल में नहीं होनी चाहिए?

हालाँकि 26 अक्टूबर की रात को मदवि रजिस्ट्रार से मिले आश्वासन के बाद सुरक्षाकर्मियों ने हड़ताल वापस ले ली थी। लेकिन फ़िलहाल तक न तो सभी कर्मियों को वेतन ही मिल सका है तथा न ही एरियर ही मिला है। सुरक्षा कर्मियों नये सिरे से अपने संघर्ष की रूपरेखा बना रहे हैं।



## पंजाब के संगरूर में दलित खेत मज़दूर की बर्बर हत्या ! दलितों के सामाजिक उत्पीड़न और आर्थिक शोषण के विरुद्ध साझा जुझारू संघर्ष छेड़ने होंगे

पंजाब के संगरूर ज़िले में जातिवादी गुण्डों की पिटाई से घायल दलित खेत मज़दूर की 16 नवम्बर को चण्डीगढ़ के पीजीआई अस्पताल में मौत हो गयी। जगमेल सिंह नामक इस शख्स का गाँव के ही कुछ सवर्ण लोगों से 21 अक्टूबर को छोटा-मोटा झगड़ा हुआ था। इस झगड़े को गाँव वालों के बीच-बचाव के बाद सुलझा भी लिया गया था। लेकिन रंजिश पाले हुए जातिवादी गुण्डों ने 7 नवम्बर को जगमेल सिंह को धोखे से बुलाकर लाठियों और सरियों से बेरहमी से पीटा। बेहोश होने तक उसकी पिटाई की गयी तथा पानी माँगने पर पेशाब पीने के लिए मजबूर किया गया। बेरहमी की इन्तहा यहीं नहीं रुकी बल्कि अपराधियों ने पीड़ित के ज़ख्मों को पेचकस से कुरेदकर उन्हें तेज़ाब से भी जलाया! पीड़ित जगमेल को चण्डीगढ़ पीजीआई में दाखिल कराया गया लेकिन बुरी तरह घायल होने के चलते वह बच नहीं सका। संक्रमण का फैलाव रोकने के लिए उसकी टाँग काटनी पड़ी लेकिन सभी अंगों के काम करना बन्द कर देने के कारण उसकी मौत हो गयी। जगमेल के परिवार में पत्नी और तीन बच्चे रह गये हैं। हालाँकि पुलिस ने आरोपियों पर मामला दर्ज करके कुछ को गिरफ्तार भी किया है किन्तु यह बर्बर घटना देश में गरीब दलितों की हालत और उनके उत्पीड़न का जीता-जागता प्रमाण है।

### दलितों के पैर धोने और उनके घर पर खाना खाने का ढोंग-पाखण्ड करने से कुछ नहीं होने वाला !

दलित उत्पीड़न की यह घटना कोई नयी घटना नहीं है। खुद सरकारी आँकड़ों की मानें तो पिछले कुछ वर्षों में दलित उत्पीड़न की घटनाओं में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है। मनुवाद और ब्राह्मणवाद की पैरोकार भाजपा के सत्ता में आने के बाद जातिवादी हमले और तेज़ हुए हैं। नेशनल क्राइम रेकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की पिछली रिपोर्ट के अनुसार 2006 से 2016 के बीच के दस सालों में दलित विरोधी अपराधों में 66 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। 2006

में 27,070 दलित विरोधी अपराध के मामले दर्ज हुए थे, 2011 में इनकी संख्या बढ़कर 33,719 हो गयी। 2016 में दलित उत्पीड़न के 48,801 मामले दर्ज हुए। देशभर में दलित विरोधी जातिगत नफ़रत व हिंसा का लम्बा इतिहास रहा है। 1989 में एससी/एसटी एक्ट के लागू होने के बावजूद देश में औसतन हर 15 मिनट पर एक दलित उत्पीड़न का शिकार होता है; हर घण्टे दलितों के खिलाफ़ 5 से ज़्यादा हमले दर्ज होते हैं; हर दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है। दलित महिलाओं की स्थिति तो और भी भयानक है। प्रतिदिन औसतन 6 दलित स्त्रियाँ बलात्कार का शिकार होती हैं। कुछ समय पहले ग्रामीण व कृषि मामलों के विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर ज्ञान सिंह व उनकी टीम ने पंजाब के 11 ज़िलों के 1,017 घरों से प्राथमिक स्तर के तथ्य एकत्रित किये थे। अप्रैल 2019 में जारी किये गये उनके विश्लेषण के मुताबिक़ खेत मज़दूरी का काम करने वाली 70 प्रतिशत महिलाओं ने माना है कि उनका यौन शोषण हुआ। इनमें 92 प्रतिशत महिलाएँ दलित हैं। एक अनुमान के मुताबिक़ पंजाब में 15 लाख मज़दूर खेतों में काम करते हैं जिनमें बड़ी संख्या दलितों की है। दूसरे राज्यों से आकर पंजाब में खेत मज़दूरी करने वालों में भी एक बड़ी संख्या दलितों की होती है। पंजाब ही नहीं बल्कि देशभर में दलित मज़दूर आबादी को आर्थिक तौर पर अति-शोषण और सामाजिक तौर पर उत्पीड़न झेलना पड़ता है।

### प्रशासन और अदालत के सामने मामले आ जाने के बाद भी वास्तविक न्याय मिलने की कोई गारण्टी नहीं !

पहले तो दलित विरोधी उत्पीड़न के बहुत सारे मामले सामाजिक डर और आर्थिक असुरक्षा के चलते पुलिस-प्रशासन के सामने ही नहीं आ पाते। किन्तु पुलिस और कोर्ट की फ़ाइलों में दर्ज होने के बाद भी न जाने कितने मामलों में न्याय नहीं हो पाता। देशभर में हुए भयंकर दलित विरोधी काण्ड और उनकी न्यायिक प्रक्रिया हमारी न्याय व्यवस्था पर भी बहुत से सवाल खड़े करती है।

आप खुद ही देखिए कि देशभर में दलितों के खिलाफ़ संगठित हिंसा करने वालों का क्या बिगड़ा। ये चन्द उदाहरण मात्र हैं:

44 दलितों की हत्या, किलवनमनी, तमिलनाडु, 25 दिसम्बर 1968, न्यायिक परिणाम – सभी आरोपियों को बरी कर दिया गया।

13 दलितों की हत्या, चुन्दुर, आन्ध्रप्रदेश, 6 अगस्त 1991, न्यायिक परिणाम – 2014 में सभी आरोपियों को छोड़ दिया गया।

10 दलितों की हत्या, नागरी, बिहार, 11 नवम्बर 1998, न्यायिक परिणाम – मार्च 2013 में सभी आरोपियों को छोड़ दिया गया।

22 दलितों की हत्या, शंकर बीघा गाँव, बिहार, 25 जनवरी, 1999, न्यायिक परिणाम – जनवरी 2015 में सभी आरोपी बरी।

21 दलितों की हत्या, बथानी टोला, बिहार, 11 जुलाई 1996, न्यायिक परिणाम – अप्रैल 2012 में सभी आरोपियों को छोड़ दिया गया।

32 दलितों की हत्या मियाँपुर, बिहार, 2000, न्यायिक परिणाम – 2013 में सभी को छोड़ दिया गया।

58 दलितों की हत्या, लक्ष्मणपुर बाथे, 1 दिसम्बर 1997, न्यायिक परिणाम – 2013 में सभी को छोड़ दिया गया।

महाराष्ट्र का प्रसिद्ध नितिन आगे केस, जिसमें एक दलित नौजवान को गाँव के सामने मार दिया गया था, 28 अप्रैल 2014, न्यायिक परिणाम - 23 नवम्बर 2017 के दिन सबको छोड़ दिया गया।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि दलितों के विरुद्ध हुए बहुत-से बर्बर से बर्बर हत्याकाण्डों में भी सज़ाएँ बिल्कुल नहीं हुईं। ये चन्द आँकड़े साफ़ बता रहे हैं कि 70 साल की आज़ादी के बाद भी गरीब दलित आबादी हर रूप से कितनी अरक्षित है। जिन मामलों में कुछ आरोपियों को सज़ा हुई, उनके लिए पीड़ितों को अदालत के भीतर और बाहर लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी और सामाजिक-आर्थिक बहिष्कार से लेकर झूठे आरोपों में फँसाये जाने तक का सामना करना पड़ा।

‘अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच’, संगरूर (पंजाब) की दलित उत्पीड़न की घटना की कड़ी भर्त्सना करता है और पंजाब और केन्द्र सरकार से माँग करता है:-  
– जगमेल सिंह के हत्यारों को तुरन्त सख्त सज़ा दो!  
– जगमेल सिंह के आश्रितों को उचित मुआवज़ा दो!  
– दलित उत्पीड़न के लम्बित मामलों को फ़ास्ट ट्रैक अदालतों से

हल करो!  
– जातिवादी उत्पीड़न के खिलाफ़ कड़े कानून बनाओ और इन्हें सख्ती से लागू करने का इन्तज़ाम करो!  
– तमाम जातिवादी संस्थाओं, सभाओं और पंचायतों पर रोक लगाओ!  
– राजकीय संस्थाओं की ओर से जातिवादी कार्यक्रमों में भागीदारी और सरकारी अनुदान पर तत्काल रोक लगाओ!

### दलित मुक्ति का रास्ता जातीय पहचान की राजनीति और प्रतीकवाद से नहीं बल्कि वर्ग आधारित जाति-विरोधी आन्दोलन से होकर जाता है !

आज अस्मितावाद (यानी दलितों को उनकी जातीय पहचान और अस्मिता के आधार पर संगठित और गोलबन्द करना) तथा प्रतीकवाद (यानी मूर्ति बनवाने या तोड़े जाने और किसी के बारे में किसी के द्वारा कुछ कह देने जैसे मुद्दों को ही मुखरता से उठाना और दलित-गरीब आबादी के असल मुद्दों पर चुप रहना) से दलितों का कोई भला नहीं होने वाला। हमें यह बात समझ लेनी होगी कि बिना क्रान्ति के दलित मुक्ति नहीं हो सकती और बिना जाति-व्यवस्था विरोधी व्यापक आन्दोलनों के क्रान्ति का विचार भी एक ख़याली पुलाव भर है। जातिवाद और ब्राह्मणवाद आज संस्कारित तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था की ही सेवा कर रहा है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता और तमाम तरह की अस्मितावादी राजनीति आज पूँजीवाद के लिए ‘संजीवनी बूटी’ के समान है। व्यवस्था के ठेकेदार पूँजीवाद द्वारा परिष्कृत करके अपना ली गयी जाति-व्यवस्था का अपने हितों के लिए ख़ूब इस्तेमाल कर रहे हैं। यही कारण है कि आज़ादी के 72 साल बाद भी जातिवादी दमन-उत्पीड़न घटने के बजाय बढ़ ही रहे हैं। यदि देशव्यापी आँकड़ों पर नज़र दौड़ाये तो दलितों का क़रीब 95 प्रतिशत हिस्सा खेतियर मज़दूर, निर्माण मज़दूर औद्योगिक मज़दूर के तौर पर खट रहा है या फिर सफ़ाई जैसे काम में लगा है।

पहचान और प्रतीकों की राजनीति

करने वाले लोग बिरले ही इस मेहनतकश दलित आबादी के मुद्दों को उठाते हैं। इस मज़दूर आबादी के मुद्दे सीधे तौर पर देश की अन्य मेहनतकश आबादी के साथ भी जुड़ते हैं। दलित विरोधी उत्पीड़न के मुद्दों के खिलाफ़ लड़े जाने वाले संघर्षों को मज़बूती के साथ तभी लड़ा जा सकता है जब हर जाति की व्यापक मेहनतकश जनता को जाति-व्यवस्था के खिलाफ़ लामबद्ध किया जायेगा। शिक्षा-रोज़गार-चिकित्सा-आवास-महंगाई जैसे मुद्दों पर होने वाले संघर्षों में हर जाति की मेहनतकश जनता की साझा भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। साथ ही मेहनतकशों के बीच वैचारिक-सांस्कृतिक-शैक्षणिक मुहिम चलाया जाना भी बेहद ज़रूरी है जिसके माध्यम से लोगों के बीच जाति-व्यवस्था के इतिहास और वर्तमान से जुड़े विभिन्न पहलुओं और इसकी समाप्ति के आवश्यक कार्यभारों व चुनौतियों को स्पष्टता के साथ रखा जा सके। तथाकथित उच्च जाति वालों के सामने भावनात्मक अपीलें से कुछ नहीं होगा। जाति-व्यवस्था विरोधी आन्दोलनों को मेहनतकश वर्ग की एकजुटता के दम पर ही असल मुक़ाम तक पहुँचाया जा सकता है। हम देश की आम मेहनतकश जनता, छात्रों-युवाओं व जातिविरोधी कार्यकर्ताओं से अपील करते हैं कि हमारी बातों पर ग़ौर करें। हमें उम्मीद है कि जाति-व्यवस्था को समाप्त करने के लिए होने वाले व्यापक संघर्षों हेतु संवाद और वैचारिक बहस-मुबाहिसे का स्वस्थ माहौल ज़रूर बनेगा।

– अखिल भारतीय जाति-विरोधी मंच

## अयोध्या फ़ैसला : मेहनतकशों का नज़रिया क्या हो ?

(पेज 9 से आगे)

लड़ने में है, जिसके बारे में दावे से कहा भी नहीं जा सकता है कि वह हुआ था भी या नहीं। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद ऐसी ही एक ताक़त है जो आम भारतीय जनता के बीच तार्किक दृष्टि की कमी, वर्ग चेतना की कमी, वैज्ञानिकता की कमी का फ़ायदा उठाते हुए उसे धर्म के आधार पर बाँट देती है। पूँजीपति वर्ग के लिए यह एक बहुत बड़ी सेवा साबित होती है क्योंकि यह सर्वहारा वर्ग के भी एक बड़े हिस्से को एक ऐसे सवाल पर आपस में बाँट देता है जो वास्तव में उसके लिए कोई सवाल है ही नहीं।

दरअसल, धर्मनिरपेक्षता के नज़रिये से आधी लड़ाई उसी दिन हार दी गयी थी

जब इस सारे मामले को एक ‘टाइटिल सूट’ यानी मालिकाना हक़ की लड़ाई में तब्दील कर दिया गया था। शुरू से ही भाजपा, विश्व हिन्दू परिषद और आर.एस.एस. के राम मन्दिर आन्दोलन का विरोध इस तर्क के आधार पर किया जाना चाहिए था कि सैकड़ों साल पहले हुई घटनाओं का आज बदला लेने की बात का कोई मतलब नहीं है। कांग्रेस और दूसरी पूँजीवादी पार्टियों से तो ऐसी कोई उम्मीद करना फ़िज़ूल ही था क्योंकि उनकी तथाकथित धर्मनिरपेक्षता तो शुरू से ही “सर्वधर्म समभाव” के नाम पर ज़्यादातर हिन्दू बहुसंख्या का और कभी-कभी मुस्लिम अल्पसंख्या का तुष्टिकरण करने के रूप में ही सामने

आती रही है। धार्मिक कार्ड का सभी अपने-अपने चुनावी हितों के हिसाब से इस्तेमाल करती रही है। मगर खुद को वामपन्थी कहने वाली संसदीय पार्टियों ने भी कभी इस दृष्टिकोण को मज़बूती से सामने नहीं रखा। वे भी धर्मनिरपेक्षता के नाम पर कभी मुलायम सिंह यादव तो कभी कांग्रेस का पुछल्ला बनी रहीं और भाजपा व संघ के तर्कों को जनता के बीच स्थापित करने में मददगार बनती रहीं। देश में क्रान्तिकारी वाम की ताक़तें एक तो खण्ड-खण्ड में बिखरी हुई थीं, दूसरे उनमें भी ज़्यादातर ग्रुपों में इस मसले पर सही सर्वहारा दृष्टिकोण को लोगों के बीच लेकर जाने के साहस का अभाव रहा।

आज हमें एक सही वैज्ञानिक दृष्टि अपनाते हुए इन अनैतिहासिक और अतार्किक सवालों को दरकिनार करके शासक वर्गों की साज़िश को समझने की ज़रूरत है। वास्तव में आज की लड़ाई आज के अन्याय के खिलाफ़ है। आज का पूँजीवादी शोषण और अन्याय सर्वहारा वर्ग का सबसे बड़ा दुश्मन है और हमारा पूरा संघर्ष उसके खिलाफ़ होना चाहिए। हमें साम्प्रदायिकता के झूँसे में आकर मन्दिर-मस्जिद के झगड़े में नहीं फँसना चाहिए। हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम पार्टियाँ, चाहे वह कांग्रेस हो, भाजपा हो, सपा हो या बसपा, मन्दिर के मुद्दे के इर्द-

गिर्द अपनी-अपनी तरह से जनता को बाँटना चाहती हैं। दरअसल, भारतीय आम जनता का एक बड़ा हिस्सा इस बात को समझने भी लगा है। एक यह भी कारण था कि इस बार इस मुद्दे पर कोई तीखा ध्रुवीकरण नहीं किया जा सका। लेकिन हमें समाज में लगातार इस प्रतिक्रियावादी सोच के विरुद्ध लड़ना चाहिए जो इतिहास के काल्पनिक अन्यायों के लिए आज आम मेहनतकश जनता की बलि चढ़ाना चाहती है। यह सोच मज़दूर वर्ग और पूरे इतिहास की दुश्मन है।



# शिक्षा के अधिकार के लिए देशभर में छात्र सड़कों पर!

जेएनयू समेत विभिन्न विश्वविद्यालयों में फ़ीस बढ़ोत्तरी के खिलाफ़ छात्रों के जुझारू आन्दोलनों पर सरकारी दमन और झूठा संघी प्रचार

यह रिपोर्ट लिखे जाने तक जेएनयू (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय), बीएचयू (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय), डीयू (दिल्ली विश्वविद्यालय) और उत्तराखण्ड के मेडिकल कॉलेजों के छात्रों के धरने-प्रदर्शन-विरोध जुलूस जोर-शोर से जारी हैं। पुलिस-प्रशासन के लाठी चार्ज, पानी की बौछारों, आँसू गैस, झूठे मुकदमों इत्यादि के रूप में दमनकारी रवैया छात्रों के हौसलों को तोड़ने में नाकामयाब साबित हो रहा है। जेएनयू में दो बार बर्बर लाठी चार्ज हो चुका है तथा बीएचयू में एक बार।

जेएनयू का घटनाक्रम ज्यादा सुखियों में है इसलिए सबसे पहले इसी पर बात करते हैं। यहाँ छात्रावासों की फ़ीसों को 2,700 रुपये सालाना से बढ़ाकर 30,100 रुपये कर दिया गया है। यही नहीं, इसपर बिजली और पानी का बिल अलग से देना होगा। छात्रावास की ज़मानत राशि को भी 5,500 रुपये से बढ़ाकर 12,000 रुपये कर दिया गया तथा फ़ीसों में हर वर्ष 10% बढ़ोत्तरी का प्रावधान कर दिया गया। कुल मिलाकर देखें तो एक छात्र को अपनी पढ़ाई पूरी करने के दौरान लाखों रुपये केवल अपने रहने पर खर्च करने पड़ेंगे।

आँकड़ों के अनुसार जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में 40 प्रतिशत छात्र ऐसे हैं जिनकी पारिवारिक आय 12,000 रुपये से भी कम है। ऐसे में क्या ये छात्र अपनी पढ़ाई जारी रख पायेंगे? नहीं। ये छात्र सस्ती शिक्षा के अपने जायज़ अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। लेकिन प्रशासन और मोदी सरकार दमन पर उतारू हैं तथा दलाल-भाण्ड मीडिया और संघी दुष्प्रचार तंत्र छात्रों को बदनाम करने में लग गया है। ज्ञात हो कि जेएनयू के छात्र 28 अक्टूबर से ही अपनी कक्षाओं का बहिष्कार करके हॉस्टल फ़ीस में बेतहाशा वृद्धि और थोपे जा रहे कई वाहियात नियमों के खिलाफ़ संघर्ष कर रहे हैं। दुनिया के सभी विकसित देशों में विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय रातभर खुले रहते हैं। जे.एन.यू. में भी बड़ी संख्या में छात्र देर रात तक लायब्रेरी में पढ़ाई करते हैं। अब प्रशासन 11.30 बजे लायब्रेरी बन्द कर देने का आदेश ले आया है। छात्रों को हॉस्टल में स्कूली बच्चों की तरह यूनिफ़ॉर्म पहनकर रहने का भी बेहूदा नियम लागू किया जा रहा है। इन सभी बदलावों के विरुद्ध छात्र आन्दोलन कर रहे थे लेकिन भोपू मीडिया लोगों को सिर्फ़ यह झूठ बता

रहा है कि हॉस्टल फ़ीस 10 रुपये से बढ़ाकर 300 रुपये महीना करने पर ही छात्र हंगामा कर रहे हैं। 18 नवम्बर को जे.एन.यू. के छात्रों ने संसद मार्च का आह्वान किया था लेकिन शान्तिपूर्ण मार्च निकाल रहे छात्रों पर फिर दो-दो बार बर्बर लाठीचार्ज किया गया जिसमें दर्जनों छात्र गम्भीर रूप से घायल हुए और 150 से अधिक छात्र-छात्राओं को गिरफ़्तार कर लिया गया। शाम को जब छात्र अपना प्रदर्शन खत्म कर रहे थे, तब सड़क की बतियाँ बन्द करवाकर उन पर सैकड़ों पुलिसवालों ने हमला किया और छात्र-छात्राओं को बुरी तरह पीटा। यहाँ तक कि एक नेत्रहीन छात्र को कई पुलिसवालों ने गिराकर पीटा और उसके सीने पर बूट से ठोकरें मारीं।

बात सिर्फ़ जे.एन.यू. तक की नहीं है बल्कि कई जगह फ़ीस बढ़ोत्तरी और शिक्षा के मूलभूत अधिकार जैसे मुद्दों को लेकर छात्र सड़कों पर हैं। उत्तराखण्ड में मेडिकल शिक्षा की फ़ीस को 80,000 रुपये से बढ़ाकर 2,15,000 रुपये कर दिया गया है। इसके खिलाफ़ छात्र पिछले करीब 50 दिनों से संघर्ष कर रहे हैं। बीएचयू के छात्र पुस्तकालय और अन्य सुविधाओं के लिए संघर्ष कर रहे

हैं, इन पर भी पुलिस ने झगड़े का बहाना बनाकर बर्बर लाठीचार्ज किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र छात्रावास की माँग को लेकर धरना दे रहे हैं।

पिछले दिनों ही एमटेक की फ़ीस 50,000 से सीधे 2 लाख बढ़ा दी गयी! साथ ही गेट (GATE) में मिलने वाली छात्रवृत्ति को खत्म कर दिया गया है! फ़ीस में बढ़ोत्तरी का मतलब यही है कि सरकार शिक्षा को आम मेहनतकश आबादी के छात्रों की पहुँच से दूर करना चाहती है! सच्चाई यह है कि फ़्रासीवादी भाजपा सरकार देश के अन्य सरकारी विभागों की तरह बजट ट्रेन की रफ़्तार से उच्च शिक्षा को भी निजी हाथों में सौंपने में जुटी हुई है। उच्च शिक्षा से लगातार निवेश हटाया जा रहा है! 2012-13 में शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 3.1% लग रहा था जोकि 2017-18 में 2.7% हो गया! हद तो यह है कि माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा कोष के लिए सेस (उपकर) लगाकर इकट्ठा किया गया 94,000 करोड़ रुपया इस कोष में दिया ही नहीं गया है। दूसरी तरफ़ मोदी सरकार ने 2016 में ही उच्च शिक्षा को आम छात्रों की पहुँच से दूर करने के लिए एक खतरनाक कदम

उठाया है! पहले उच्च शिक्षण संस्थानों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा अनुदान दिया जाता था लेकिन अब हायर एजुकेशन फ़ाइनेंसिंग एजेंसी के तहत लाकर इन संस्थानों को अनुदान नहीं बल्कि ऋण दिया जायेगा और हर 10 साल के अन्दर इन संस्थानों को दिये गये ऋण की एक राशि चुकानी होगी! यह 2017 से लागू हो चुका है और इस कदम का साफ़ मतलब है कि सरकारी उच्च शिक्षण संस्थान अपनी फ़ीस बढ़ायेंगे ताकि सरकार को ऋण की राशि चुकायी जा सके! इसका सीधा असर हमें देखने को मिल ही रहा है। अब आई.आई.टी., मेडिकल कॉलेज और विभिन्न विश्वविद्यालय फ़ीसों में और भी बढ़ोत्तरी करेंगे! सोचे-समझे तरीके से फ़ीस बढ़ाकर आम जनता के बेटे-बेटियों को उच्च शिक्षा से दूर किया जा रहा है! सरकार अच्छे संस्थानों की पढ़ाई को महंगा कर शिक्षा को बस अमीरजादों का विशेषाधिकार बना देना चाहती है। मेहनतकशों के नज़रिये से देखा जाये तो निःशुल्क व समान शिक्षा सबका जन्मसिद्ध अधिकार है और इसके लिए संघर्ष ज़रूरी और जायज़ है!

— इन्द्रजीत

## इलाहाबाद में एक और प्रतियोगी छात्रा की आत्महत्या!

हम चुप क्यों हैं? हम किसका इन्तज़ार कर रहे हैं?

इलाहाबाद में धूमनगंज के कालिन्दीपुरम में रहने वाली प्रतियोगी छात्रा विनीता वर्मा ने कई वर्षों से तैयारी करने के बावजूद चयन न होने पर 4 नवम्बर को फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। इसके पहले बीते दो-तीन महीनों में अकेले इलाहाबाद शहर में आठ-नौ प्रतियोगी छात्रों की आत्महत्या की खबरें आ चुकी हैं। आत्महत्या करने वाली छात्रा ने अपने सुसाइड नोट में लिखा है कि वह अपने माँ-बाप की उम्मीदों पर खरा न उतर सकी।

इलाहाबाद और कोटा जैसे प्रतियोगी छात्रों के बड़े केन्द्र मौजूदा समय में अवसाद और आत्महत्या के गढ़ बनते जा रहे हैं। आँकड़ों के मुताबिक पिछले दस सालों में देश में लगभग एक लाख युवा आत्महत्या कर चुके हैं। बेरोज़गारी दर पिछले पैंतालीस वर्षों के अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच चुकी है। 'सेक्टर फॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकोनॉमी' की रिपोर्ट के मुताबिक फ़रवरी 2018 में बेरोज़गारी दर 5.9 दर प्रतिशत थी जोकि फ़रवरी 2019 में बढ़कर 7.2 प्रतिशत पहुँच गयी। बेरोज़गारी इस सदी की बहुत बड़ी त्रासदी है। बेरोज़गारी ने बहुत सारे नौजवानों को इतने गहरे अवसाद में धकेल दिया है कि मनोचिकित्सकों की दुकानों पर लम्बी लाइनें लगी हुई हैं। पदों की कम संख्या, घूसखोरी, जुगाड़, पर्चा लीक की बाधा-दौड़ के बीच पक्की नौकरी आम छात्रों के लिए बहुत दूर की कौड़ी बन चुकी है।

'सेक्टर फॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकोनॉमी' की रिपोर्ट के मुताबिक फ़रवरी 2018 से फ़रवरी 2019 के बीच सरकारी और निजी विभागों में काम करने वाले 60 लाख लोग अपनी नौकरी गँवा चुके हैं। देश में शिक्षा, चिकित्सा, सड़क-परिवहन, बिजली, सिंचाई, पुलिस, रेलवे आदि विभागों में लाखों पद खाली पड़े हैं, जिन्हें सरकार खत्म करती जा रही है या ठेके या संविदा के हवाले कर रही है।

बीएसएनएल लगभग बिकने के कगार पर खड़ा है और देश के सबसे बड़े पब्लिक सेक्टर रेलवे के विभिन्न विभागों में 99 प्रतिशत पद खत्म करके एक प्रतिशत तक लाने की योजना अमल में आनी शुरू हो चुकी है। योगी सरकार द्वारा पिछले साल सरकारी आदेश जारी करके चतुर्थ श्रेणी की भर्तियों पर रोक लगायी जा चुकी है।

प्राइवेट सेक्टर में रोज़गार की कोई सुरक्षा नहीं है। पूँजीपति लगातार उन्नत मशीनें लगाकर मेहनतकशों को न केवल बेरोज़गारी की हालत में सड़कों पर ढकेलते रहते हैं बल्कि मेहनताना बहुत कम होने के चलते मज़दूरों को अपना पेट भरने के लिए दो मज़दूरों के बराबर काम करना पड़ता है। सरकार धन की कमी का पाखण्ड रच रही है जबकि कुम्भ, अयोध्या में दीये जलाने, मूर्तियाँ लगवाने जैसे कामों में अरबों-खरबों रुपये खर्च कर रही है। आरटीआई से मिली जानकारी के मुताबिक पिछले चार वित्तीय वर्षों में सांसदों पर लगभग 20 अरब रुपये खर्च किये गये। अगर श्रम क़ानूनों का सही से पालन कराया जाये, आठ घण्टे के काम में उचित वेतन दिया जाये, सरकारी विभागों में खाली पदों को भरा जाये, धन्नासेठों पर टैक्स लगाकर व नेताओं की विलासिता में कटौती करके देशभर में शिक्षा, चिकित्सा, आवास, सड़क, परिवहन, बिजली, पानी आदि की उचित व्यवस्था के लिए निवेश किया जाये तो देश के बेरोज़गारों की संख्या से कई गुना ज्यादा रोज़गार पैदा किया जा सकता है।

जब तक झूठे नारों के नशे से बाहर आकर उदारिकरण-निजीकरण की नीतियों के विरुद्ध छात्रों-कर्मचारियों-मज़दूरों की व्यापक एकता नहीं क़ायम की जायेगी, तब तक लूट पर टिकी मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था इसी तरह नौजवानों की ज़िन्दगियाँ लीलती रहेगी। — इलाहाबाद डेस्क

## बेरोज़गार छात्रों-युवाओं से हज़ारों करोड़ की

कमाई कर रही बेशर्म सरकारें

देश की करोड़ों युवा आबादी पिछले 45 वर्षों में अब तक की सबसे भयंकर बेरोज़गारी का सामना कर रही है। करोड़ों मज़दूरों के साथ ही उच्च शिक्षा पाये हुए युवा भी नौकरी की तलाश में ठोकरें खा रहे हैं। हर साल दो करोड़ रोज़गार पैदा करने के दावों से लेकर स्किल इण्डिया, स्टैण्ड अप इण्डिया, कौशल विकास जैसी योजनाओं की पोल खुल चुकी है। ऊपर से सरकार बेशर्मी के साथ बेरोज़गारों से भी करोड़ों की कमाई करने में लगी हुई है।

अभी ताज़ा उदाहरण चिकित्सा शिक्षा एवं दन्त चिकित्सा शिक्षा महाविद्यालयों में एमबीबीएस व बीडीएस पाठ्यक्रमों में दाखिले के लिए होने वाली परीक्षा 'नीट-2019' (राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा) का है जिसके आवेदन शुल्क से नेशनल टेस्टिंग एजेंसी को 192 करोड़ रुपये से ज्यादा राशि बटोरी गयी है। इस परीक्षा में भाग लेने के लिए सामान्य एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए पंजीयन शुल्क 1400 रुपये एवं एससी-एसटी के लिए 750 रुपये रखा गया था। इसमें कुल 15,19,375 अभ्यर्थियों ने पंजीयन कराया, जिनमें से 14,10,755 अभ्यर्थियों ने परीक्षा में भाग लिया और लगभग 70,000, यानी करीब 5 प्रतिशत का चयन हुआ। आरटीआई के तहत जब पूछा गया कि नीट-2019 परीक्षा के आयोजन पर आयी लागत और बची हुई राशि का कब, कहाँ और कैसे उपयोग किया गया है तो नेशनल टेस्टिंग एजेंसी ने गोलमोल जवाब देकर टाल दिया। इससे पहले मेडिकल प्रवेश परीक्षा में चुने गये छात्रों की काउन्सिलिंग पर 18.32 करोड़ वसूले गये थे जबकि खर्च केवल 2.76 करोड़ रुपये हुए।

यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है। रेलवे, बैंक, पुलिस, शिक्षक सहित तमाम सरकारी

नौकरियों के लिए हर साल करोड़ों नौजवान आवेदन करते हैं। एक-एक पद के लिए हज़ारों-लाखों लोग फ़ॉर्म भरते हैं। एक-एक नौजवान कई-कई परीक्षाओं के लिए फ़ॉर्म भरता है क्योंकि किसी को नहीं पता कि उसे कहाँ नौकरी मिल पायेगी। उत्तर प्रदेश में चपरासी के 368 पदों के लिए 23 लाख लोगों के आवेदन करने की चर्चा अक्सर होती है। लेकिन लगभग यही हाल सभी नौकरियों का है। पिछले वर्ष रेलवे के 90 हज़ार पदों के लिए 1.5 करोड़ नौजवानों ने आवेदन किया था। पूरे देश में होने वाली केन्द्र और राज्य सरकार की नौकरी की परीक्षाओं का अगर मोटा-मोटा हिसाब लगाया जाये तो भी यह संख्या हर साल दसियों करोड़ तक जा पहुँचेगी। इन सभी के लिए फ़ॉर्म भरने का शुल्क, परीक्षा की तैयारी के लिए गाइडबुक, कोचिंग आदि का खर्च, परीक्षा देने के लिए एक शहर से दूसरे शहर की यात्रा आदि का खर्च जोड़ा जाये तो समझना मुश्किल नहीं है कि देशभर में बेरोज़गारों की आबादी से हर साल हज़ारों करोड़ रुपये वसूल लिये जाते हैं। जो सरकार नौजवानों को रोज़गार देने की अपनी बुनियादी ज़िम्मेदारी नहीं पूरी कर सकती, उसे कम से कम नौकरी तलाशने में होने वाले खर्च का बोझ तो बेरोज़गारों पर नहीं डालना चाहिए। केवल प्रधानमंत्री के प्रचार पर 5600 करोड़ रुपये और मंत्रियों-सांसदों-विधायकों के ठाठ-बाट पर हज़ारों करोड़ रुपये जिस देश में फूँक दिये जाते हों, वहाँ तो ऐसा करना और भी अश्लील लगता है। लेकिन इसीलिए तो नौजवानों को नकली राष्ट्रवाद और धार्मिक-जातीय नफ़रत की अफ़ीम पिलायी जा रही है, ताकि वे अपनी फटी जेब पर पड़ रहे इस डाके का भी विरोध न कर सकें।

— बिगुल डेस्क



# पूँजीवादी युद्ध और युद्धोन्माद के विरुद्ध बोल्शेविकों की नीति और सरकारी दमन

प्रसिद्ध पुस्तक 'ज़ार की दूमा में बोल्शेविकों का काम' के कुछ हिस्सों की इस श्रृंखला में **दसवीं कड़ी** प्रस्तुत है। दूमा रूस की संसद को कहते थे। एक साधारण मज़दूर से दूमा में बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बने **ए. बादायेव** द्वारा करीब 100 साल पहले लिखी इस किताब से आज भी बहुत-सी चीज़ें सीखी जा सकती हैं। बोल्शेविकों ने अपनी बात लोगों तक पहुँचाने और पूँजीवादी लोकतंत्र की असलियत का भण्डाफोड़ करने के लिए संसद के मंच का किस तरह से इस्तेमाल किया इसे लेखक ने अपने अनुभवों के जरिये बखूबी दिखाया है। इस बार हम जो अंश प्रस्तुत कर रहे हैं उसमें हम देख सकते हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के पहले जब तमाम देशों के पूँजीपति दुनिया की लूट में हिस्से की बन्दरबाँट के लिए युद्ध करने पर उतावले हो रहे थे और पूँजीवादी सरकारें अपने देशों में राष्ट्रवादी जुनून और युद्धोन्माद भड़का रही थीं ताकि अलग-

अलग देशों के मज़दूरों को एक-दूसरे की जान का दुश्मन बनाया जा सके, तब बोल्शेविक पार्टी ने दृढ़ता से युद्ध-विरोधी रुख अख्तियार किया था और निरंकुश ज़ारशाही सरकार के दमन का सामना करते हुए क्रान्ति की तैयारियों को आगे बढ़ाया था। इस प्रसंग को पढ़ते हुए आज हमारे देश पर ध्यान चले जाना स्वाभाविक है जब सत्ता में बैठे फ़ासिस्ट युद्ध का पागलपन पूरे देश में फैला देना चाहते हैं ताकि मेहनकतश लोगों की असली समस्याओं से ध्यान हटाया जा सके। यह पूरी पुस्तक आज भी मज़दूर आन्दोलन में काम कर रहे लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। इसे पढ़ते हुए पाठकों को लगेगा मानो इसमें जिन स्थितियों का वर्णन किया गया है वे हजारों मील दूर रूस में नहीं बल्कि हमारे आसपास की ही हैं। 'मज़दूर बिगुल' के लिए इस श्रृंखला को **सत्यम** ने तैयार किया है।

## जेल में

हमें जेल के सख्त प्रशासन की निगरानी में एकान्त कारावास में रखा गया और बाहरी दुनिया से काट दिया गया। गाहे-बगाहे हमें कुछ छिट-पुट खबरें और रूसी सेना की विजय व देशभर में फैली देशभक्ति की लहर के बारे में आधिकारिक विवरण सुनने को मिलते थे।

सेण्ट पीटर्सबर्ग के कारखानों में एक नया आन्दोलनकर्ता प्रकट हुआ है। 'जनता से जुड़ाव' साबित करने की कोशिश में खुद निकोलस कार्यस्थलों का दौरा कर रहा था। वह प्रतापी लोगों के एक समूह से घिरा हुआ था और वर्दी व सादे कपड़ों में तैनात पुलिस उसकी सतर्कतापूर्वक रखवाली कर रही थी। उसने पुतिलोव और अन्य संस्थानों का दौरा किया। यह सारा का सारा कार्यक्रम देशभक्तिपूर्ण प्रदर्शनों के सारे क्रायदों का उचित पालन करते हुए मंचित किया गया। खुशी की किलकारियाँ, राष्ट्रगीत के गान, चित्र-प्रतीकों का प्रदर्शन, सब कुछ एक नाटक की तरह चला।

लेकिन मज़दूरों के बीच वास्तव में क्या चल रहा था, उनके बीच क्रान्तिकारी प्रचार को किस प्रकार चलाया जा रहा था और उनकी वास्तविक भावनाएँ क्या थीं, इसकी कोई सूचना हमें नहीं मिल रही थी और यह मुमकिन भी नहीं था।

हमारी गिरफ्तारी के दो या तीन दिन बाद हमसे पहली बार पूछताछ की गयी और जब हम एक साथ आये तो हमें कुछ शब्दों के आदान-प्रदान का मौक़ा मिल गया था। हालाँकि, हमें जल्दी ही अलग कर दिया गया था और हमसे अलग-अलग पूछताछ हुई।

ओज़ियोर्की में तलाशी के दौरान हम इस बात पर सहमत थे कि हर सम्भव कोशिश करके हम वह सब कुछ करेंगे जिससे पुलिस को यह साबित करने से रोका जा सके कि हमने कोई पार्टी सम्मेलन आयोजित की थी। हम सभी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों, कार्यवृत्त, कार्यसूची, इत्यादि को नष्ट करने में कामयाब रहे, और हमने यह कहने का निर्णय लिया कि हम एक दोस्ताना मुलाक़ात के लिए श्रीमती गैत्रीलोव के मेहमान थे। जाँच मजिस्ट्रेट द्वारा जब पूछताछ की गयी तो हमने यही तरीक़ा अपनाया और किसी ने दोष स्वीकार नहीं किया। हमने बताया कि हम श्रीमती गैत्रीलोव के मेहमान के रूप में आये थे और इस मौक़े पर मज़दूर-वर्ग के संगठनों, बीमा-सम्बन्धी मामलों, अखबार के प्रकाशन आदि के बारे में

कई सवालियों पर हमने चर्चा की और यह स्वाभाविक ही था कि मज़दूरों के कुछ प्रतिनिधियों से मिलने के लिए हम इस मौक़े का फ़ायदा उठाये क्योंकि हमारे धड़े से जाकर मिलना किसी भी व्यक्ति को पुलिस की निगाहों में संदिग्ध बना देता। हमारे पास पार्टी साहित्य बरामद होने के बारे में हमने यह बताया कि प्रतिनिधियों के तौर पर हमें विभिन्न राजनीतिक रुझानों की जानकारी रखनी पड़ती है। जब युद्ध के प्रति हमारे रवैये के बारे में पूछा गया तो मजिस्ट्रेट के सामने हमने दूमा के 26 जुलाई के सत्र में दोनों सामाजिक-जनवादी धड़ों द्वारा पढ़ी गयी घोषणा का हवाला दिया।

शागोव ने कहा कि श्रीमती गैत्रीलोव से उसकी जान-पहचान तब हुई जब वह किसी काम से हमारे धड़े से मिलने आयी थीं और बाद में जब वह उससे रास्ते में मिलीं तो उन्होंने उसे और अन्य प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया कि वे उससे मिलने आयें। उनके मकान में कोई सम्मेलन नहीं हुआ था और न ही वहाँ किसी प्रस्ताव का मसौदा तैयार किया गया था, सारी बातचीत बीमा संघों और एक अखबार के प्रकाशन के बारे में होती रही।

मैंने बताया कि मैं श्रीमती गैत्रीलोव के निजी आमंत्रण पर वहाँ गया था। उस आमंत्रण का इस मामले से कोई लेना-देना नहीं था। हमारे बीच बस कुछ आम बातचीत हुई, जैसाकि इस तरह के मौक़ों पर दोस्तों के बीच हुआ करती है। न कोई सम्मेलन आयोजित किया गया और न ही किसी प्रस्ताव पर चर्चा की गयी।

कुछ भेद पाने की कोशिश में मजिस्ट्रेट लगातार मुझसे सम्मेलन में आये सेण्ट पीटर्सबर्ग के प्रतिनिधियों, एंतिपोव और कोज़लोव, के साथ मेरे सम्बन्धों के बारे में पूछताछ करता रहा। वे दोनों सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी के सदस्य थे और एंतिपोव सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी की कार्यकारिणी से सम्बन्धित था। मैंने एंतिपोव के साथ अपनी जान-पहचान के बारे में कहा कि जब वह बेरोज़गार था तो मुझसे मिलता था और काम पाने के लिए मुझसे मदद माँगी थी। उसी मक़सद से वह मुझसे मिलने गैत्रीलोव के मकान में आया था। मैंने कहा कि कोज़लोव को सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित एक पत्रिका के प्रकाशन के बारे में बातचीत करने के लिए आमंत्रित किया गया था, और कामेनेव से मेरी मुलाक़ात प्राब्दा के कार्यालय में हुई थी, जिसमें उसने सहायता की थी। मेरे लिए यह समझाना सबसे मुश्किल था कि मेरे पास किसी

दूसरे नाम का पासपोर्ट कैसे आया। मैंने कहा कि मज़दूर अक्सर इस अनुरोध के साथ मेरे पास अपना पासपोर्ट लेकर आते कि मैं उन्हें स्टेट दूमा के सार्वजनिक दीर्घा का पास दिलाने की कोशिश करूँ। और तब कभी-कभी लम्बे समय तक ये दस्तावेज़ मेरे पास ही पड़े रहते, जब तक कि उनके मालिक आकर इसे वापस नहीं ले जाते। मेरे पास जो पासपोर्ट मिला है उसके साथ भी यही मामला था। इस सफ़ाई से मजिस्ट्रेट सन्तुष्ट तो नहीं हुआ, लेकिन इसके आगे मुझसे कुछ और हासिल कर पाने में वह नाकाम रहा।

पेत्रोव्स्की ने भी इसी तरह के जवाब दिये। उसे मेहमान के रूप में बुलाने के पीछे कोई खास मक़सद नहीं था और उसने यह बताने से इन्कार कर दिया उसे किसने आमंत्रित किया था। वह गैत्रीलोव के मकान में प्रतिनिधियों और कामेनेव के अलावा और किसी को भी नहीं जानता था। उसके पास मिले सभी दस्तावेज़ उसके पास या तो डाक के माध्यम से आये या संदेशवाहकों के जरिये अज्ञात व्यक्तियों की तरफ़ से आये थे। युद्ध पर निबन्ध में संशोधन उसकी लिखावट में तो किये गये थे मगर उन्हें किसी दूसरे व्यक्ति ने प्रस्तावित किया था, जिसका वह नाम नहीं बताना चाहता है और दूमा सम्बन्धी अपने काम में उसका इरादा इन बदलावों का उपयोग करने का था। पेत्रोव्स्की ने आगे कहा कि उसके पास पाये गये केवल इन दस्तावेज़ों के आधार पर युद्ध के बारे में उसके रवैये का मूल्यांकन करना नामुमकिन था।

सेमोयलोव ने कहा कि गैत्रीलोव के घर पर संयोगवश ही लोगों से मुलाक़ात हो गयी थी, कुछ लोग वहाँ अपने प्रतिनिधियों से बातचीत करने के लिए आये थे। उसके पास बरामद सवालियों की सूची इसलिए थी कि कुछ भूल जाने पर वह उससे मदद ले सके, उसे यह जानकारी चाहिए थी कि जब वह विदेश में इलाज करवा रहा था तो उस दौरान यहाँ क्या-क्या हुआ था।

कामेनेव की सफ़ाई यह थी कि वह मज़दूर अखबार के प्रकाशन का काम, जिसके लिए उसने पहले सहयोग किया था, फिर से शुरू करने के बारे में बातचीत करने उस मकान में आया था। उसने मिलने के लिए एक तीसरे व्यक्ति का घर चुना था क्योंकि पेत्रोव्स्की के मकान पर जाने से वह डरता था। बातचीत दिनभर की आम घटनाओं तक ही सीमित रही और वहाँ कोई सम्मेलन या प्रस्ताव हुआ ही नहीं। अन्त में, कामेनेव ने कहा

कि पाये गये दस्तावेज़ों की सामग्री युद्ध पर उसके विचारों से मेल नहीं खाती।

हमारे साथ गिरफ्तार अन्य साथियों में एंतिपोव, कोज़लोव, वोरोनीन, याकोवलेव, लिन्दे और श्रीमती गैत्रीलोव ने भी लगभग इसी तरह के बयान दिये। सभी ने अपने-अपने तरीक़े से यह स्पष्ट किया कि वे उस समय सेण्ट पीटर्सबर्ग में क्यों थे, उन्होंने कहा कि यह तो बस संयोग ही था कि उनकी मुलाक़ात उस मकान में हो गयी थी क्योंकि वे अपने प्रतिनिधियों से वहाँ मिलने आये हुए थे।

मुरानोव अधिक कठिन स्थिति में था। उसके नोटबुक में पार्टी के गैर-क्रान्ती कार्यों से सम्बन्धित कई सारी टिप्पणियाँ खुद उसकी लिखावट में थीं। मुरानोव इस नोटबुक को अपना कहने से मना नहीं कर सकता था, इसलिए उसने पूरी तरह चुप्पी साध ली और किसी तरह की गवाही देने से इन्कार कर दिया।

हम सभी से अलग-अलग पूछताछ की गयी और पहली पूछताछ के बाद मजिस्ट्रेट ने हमें व्यक्तिगत रूप से हाज़िर होने को कहा। हमें जेल में एक-दूसरे से सम्पर्क कर पाने का या यह जान पाने का मौक़ा ही नहीं मिला कि दूसरे साथियों ने क्या कहा था। प्रारम्भिक जाँच पूरी होने के बाद ही जब हमें उस सामग्री को जिसपर आरोप आधारित था, जाँचने की अनुमति दी गयी तब कहीं जाकर हम जान पाये कि क्या जवाब दिये गये थे।

प्रारम्भिक जाँच तेज़ी से आगे बढ़ी, क्योंकि सरकार मुक़दमे को उसी दरमियान निपटाने की हड़बड़ी में थी जब परिस्थितियाँ अनुकूल हों। हमारी गिरफ्तारी और मुक़दमे की योजना पहले से ही तैयार कर ली गयी थी जिसकी वजह से किसी सघन जाँच-पड़ताल की कोई ज़रूरत ही न थी। मजिस्ट्रेट और वकीलों को ज़ब्त किये गये दस्तावेज़ों के आधार पर आरोपों को बस इस तरह तैयार करना था कि पहले से तय की गयी सज़ा सुनायी जा सके।

## कोर्ट मार्शल का सवाल

छह हफ़्ते की कैद के बाद दिसम्बर के अन्त में प्रारम्भिक जाँच पूरी हो गयी थी और हमें फिर से जाँच मजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर होने को कहा गया ताकि जाँच के निष्कर्षों से हम परिचित हो जायें। लम्बे अन्तराल के बाद हम एक दूसरे से मिले थे और मुक़दमे में अपने व्यवहार के सम्बन्ध में एक सहमति पर पहुँचने में हम सफल रहे थे। यह साबित करने के लिए कि यह धड़ा क्रान्तिकारी कामों का दोषी था प्रारम्भिक जाँच के निष्कर्षों को विस्तार से रखा गया था

और इसमें हमसे लिये गये दस्तावेज़, हमारी जमा राशि, पुलिस द्वारा दर्ज की गयी सूचना, युद्ध के दौरान पीटर्सबर्ग में जारी की गयी विविध घोषणाएँ और कई दूसरे दस्तावेज़ शामिल थे। इन सारी चीज़ों को पढ़ने में कई दिन लग गये।

सारी बातें सैनिक अदालत द्वारा हम पर मुक़दमा चलाये जाने की सम्भावना की तरफ़ इंगित कर रही थीं और बाहर रह गये हमारे मित्रों के बीच भी यही विश्वास हावी था। वे चिन्तित थे और वकीलों की मदद से यह कोशिश कर रहे थे कि हमारा मामला सामान्य अदालत में चला जाये।

ओज़ियोर्की, जहाँ छापा पड़ा था, एक ऐसे ज़िले में स्थित था जहाँ सैनिक कानून की घोषणा हो चुकी थी। ग्रैविलोव के घर पर पुलिस का छापा सैनिक कानून के नियमों के तहत डाला गया था। इसलिए, औपचारिक तौर पर, सैनिक अदालत द्वारा हम पर मुक़दमा चलाया जा सकता था। और यह सरकार के लिए प्रशंसनीय ढंग से सुविधाजनक था जो राजद्रोह के अपराध में धड़े को एकबारगी और हमेशा के लिए निपटा देना चाहती थी।

इसलिए मुक़दमे को सामान्य अदालत को सौंप देने के फ़ैसले से हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। कानून के मुताबिक अभियुक्त को उस सारी सामग्री के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त था जिनपर आरोप आधारित था। हमने इस अधिकार का उपयोग एक दूसरे से मुलाक़ात करने और बचाव की एक आम दिशा तैयार करने के लिए किया। जब हमने दूसरी बार यह सामग्री पढ़ना शुरू किया तो शुरुआत में हमें ज़ार का एक फ़रमान दिखा जिसमें निकोलस द्वितीय ने "आदेश किया था" कि मुक़दमे को सैनिक अदालत से निकालकर सामान्य अदालत को सौंप दिया जाये। इस मामले को अब पेत्रोग्राद उच्च न्यायालय के विशेष सत्र द्वारा लिया जाना था।

सरकार की योजनाओं के इस आकस्मिक परिवर्तन की किस प्रकार व्याख्या की जा सकती है? यह निस्सन्देह उस बदलाव को प्रतिबिम्बित करता था जो देश में घटित हो रहा था। फ़ौजी हारों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त और सेना की भयावह स्थिति की बढ़ती अफ़वाहों ने वर्चस्ववादी कोहरे को उड़ाना शुरू कर दिया था, जबकि इस बात के सारे संकेत मौजूद थे कि मज़दूर वर्ग का आन्दोलन, हालाँकि अभी कमज़ोर था, फिर से उभर



## बेरोज़गारी की भयावह स्थिति : पहली बार देश में कुल रोज़गार में भारी कमी!

(पेज 1 से आगे)

निर्माण क्षेत्र में रोज़गार वृद्धि की दर धीमी बनी हुई है। गैर-मैन्युफैक्चरिंग रोज़गार (मुख्यतया भवन-निर्माण) जो 2004-05 से 2011-12 तक हर वर्ष करीब 40 लाख रोज़गार पैदा करते थे, उनमें 2011-12 से 2017-18 के बीच केवल 6 लाख रोज़गार प्रति वर्ष पैदा हुए।

इससे पहले राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के सावधिक श्रम शक्ति सर्वेक्षण के अनुसार बेरोज़गारी की इतनी बुरी स्थिति 1972-73 में थी। यह वही समय था जब वैश्विक तेल संकट के कारण अर्थव्यवस्था भीषण संकट में घिरी थी। यही वह भी समय था जब पहली बार उपभोक्ता खर्च में कमी आ गयी थी। उस समय के बाद आज फिर से उपभोक्ता खर्च में कमी आयी है जिसका मतलब

है कि आम लोग अपने खाने-पीने की बुनियादी चीज़ों पर भी खर्च नहीं कर पा रहे हैं। इसका सीधा सम्बन्ध बढ़ती बेरोज़गारी से है जिसके कारण लोगों की आमदनी लगातार घट रही है।

ग्रामीण पुरुष युवाओं (15-29 वर्ष) के बीच बेरोज़गारी 2011-12 में 5 प्रतिशत से बढ़कर 2017-18 में 17.4 प्रतिशत हो गयी। उसी आयु वर्ग में ग्रामीण स्त्रियों के बीच बेरोज़गारी 2011-12 में 4.8 प्रतिशत से बढ़कर 2017-18 में 13.6 प्रतिशत तक पहुँच गयी। पढ़े-लिखे लोगों की स्थिति भी अच्छी नहीं रही। शिक्षित ग्रामीण स्त्रियों के बीच बेरोज़गारी 2004-05 से 2011-12 के बीच 9.7 से 15.2 प्रतिशत तक रहती थी जो 2017-18 में 17.3 प्रतिशत हो गयी।

केवल एक क्षेत्र जिसमें रोज़गार बढ़ा

है, वह है सेवा क्षेत्र, यानी होटल, रेस्त्रां, खुदरा व्यापार, बैंक, दफ़्तरों आदि में वेटर, सफाईकर्मी, सेल्समैन आदि जैसे काम जिनमें बेहद कम वेतन पर बहुत अधिक काम कराया जाता है, और न तो रोज़गार की कोई गारण्टी होती है, और न ही पेंशन, बीमा आदि किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा मिलती है।

रिपोर्ट के लेखक बताते हैं कि 2011-12 से ही हर वर्ष देश की कुल श्रम शक्ति में शामिल होने वाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। 2004-05 से 2011-12 के बीच हर वर्ष 20 लाख नये लोग श्रम बल में शामिल होते थे। पिछले 6 वर्षों में यह संख्या बढ़कर 50 लाख प्रति वर्ष हो गयी है जबकि इसी दौरान गैर-कृषि रोज़गार वृद्धि में गिरावट आयी है। इन दोनों को मिलाकर देखने से पता चलता है कि खुली बेरोज़गारी दर में बढ़ोत्तरी हो रही

है। श्रमिकों की आपूर्ति बढ़ रही है लेकिन उनकी माँग में कमी आ रही है। इसी के नतीजे के तौर पर वास्तविक मज़दूरी ठहरी हुई है या उसमें गिरावट आ रही है।

पूँजीवादी व्यवस्था में बार-बार आने वाले आर्थिक संकटों के दौर में बेरोज़गारों की रिज़र्व सेना में भारी बढ़ोत्तरी होती है। कारखानों, मिलों, खदानों के बन्द होने, निर्माण की गतिविधियों में ठहराव आने, व्यापार मन्दा पड़ने के साथ ही बड़े पैमाने पर मज़दूरों-कर्मचारियों को अपने रोज़गार से हाथ धोना पड़ता है। संकट के दौरों में मज़दूरों पर बेरोज़गारी की मार और भी बुरी तरह पड़ती है। दुनियाभर के अर्थशास्त्री यह बता चुके हैं कि पूँजीवाद अब जिस मंज़िल में है, वहाँ संकट और मन्दी अब एक स्थायी चीज़ बन चुके हैं। बीच-बीच में संकट अति गम्भीर

रूप धारण कर लेता है, लेकिन संकट से उबरकर समृद्धि और उछाल के दौर अब नहीं आते। इसी का नतीजा है कि बेरोज़गारी लगातार एक भीषण संकट के रूप में बनी हुई है और बीच-बीच में इससे राहत के कुछ दौर भी नहीं आने वाले। बल्कि यह संकट बीच-बीच में विस्फोटक स्थिति अख्तियार करता रहेगा, जैसीकि इस समय दिख रही है।

ऐसे में फ़ासिस्ट मोदी सरकार की पूँजीपतियों को बहुत ज़रूरत है ताकि राष्ट्रवाद और धार्मिक जुनून के नशे की खुराकें देकर बेरोज़गार मज़दूरों और युवाओं को एकजुट होने और लड़ने से रोका जा सके। फिलहाल वे अपने मंसूबों में कामयाब होते दिख रहे हैं। क्या इस देश के मज़दूर और नौजवान ऐसे ही चुपचाप बर्बादी की ओर धकेले जाते रहेंगे?

## पूँजीवादी युद्ध और युद्धोन्माद के विरुद्ध बोल्शेविकों की नीति और सरकारी दमन

(पेज 13 से आगे)

रहा था। आये दिन आर्थिक हड़तालें होने लगी थीं और जनवरी 1915 में कुछ जिलों में राजनीतिक हड़तालें हुईं। अब सरकार और अधिक उन खबरों के भरोसे नहीं रह सकती थी कि मज़दूर प्रतिनिधियों की सज़ा का स्वागत राष्ट्रभक्ति के उल्लासपूर्ण जयकारों के साथ किया जा रहा है।

इन्हीं विचारों के कारण निकोलस द्वितीय को अपने 'कृपापूर्ण' फ़रमान पर मोहर लगानी पड़ी और सरकार को मज़दूरों के प्रतिनिधियों को गोली मारने के अपने पहले के इरादे को छोड़ना पड़ा।

### मज़दूरों के प्रदर्शन की तैयारियाँ

मुक़दमा शुरू होने के ठीक पहले प्रकाशित एक घोषणा में सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी ने मज़दूरों के सामने यह स्पष्ट किया कि सरकार के पीछे हटने का मतलब क्या है :

मज़दूर प्रतिनिधियों पर मुक़दमा शुरू होने वाला है। पहले तो सरकार ने उनपर राजद्रोह का आरोप लगाना चाहा और इस झूठे अभियोग को अपने समाचारपत्रों में प्रकाशित कर दिया। लेकिन उनकी दाल नहीं गली। वे उनपर सैनिक अदालत में मुक़दमा चलाना चाहते थे परन्तु सर्वोच्च शासकों और आज थोक भाव से की जानेवाली हत्या के निर्देशकों ने मंत्रियों को, उन्हें मुखर्ष के सम्बोधन से नवाजने के बाद बताया कि मज़दूरों के प्रतिनिधियों का कोर्ट-मार्शल करने का मतलब होगा स्वयं अपने ही हाथों हर तरफ़ असन्तोष के बीज बोना।

सरकार द्वारा "राजद्रोह", "साज़िश" आदि की जो धुन्ध कुशलतापूर्वक फैलायी गयी थी वह मुक़दमे के समय तक काफ़ी हद तक उड़ चुकी है। मुक़दमे का विवरण देने वाले अख़बारी रिपोर्ट इस तथ्य को छिपा नहीं सके थे कि दूमा के मज़दूर प्रतिनिधियों पर यह मुक़दमा उनकी राजनीतिक सक्रियताओं के कारण है। सरकार ने फिर से पहले जैसा प्रभाव पैदा करने के लिए अपने वफ़ादार कुत्ते ब्लैक हण्ड्रेड प्रेस को मैदान में उतार दिया है, जिसने ज़ोर-ज़ोर से भौंककर

जनता का आक्रोश दिखाने की कोशिश की। ब्लैक हण्ड्रेड के सारे अख़बारों ने "अपराधियों" के लिए सख्त सज़ा की माँग की, उस पूरे झुण्ड में कोई भी स्वेत (लाइट) से ज़्यादा भयानक और निर्दयी न था।

स्वेत ने धड़े पर यह दोषारोपण किया कि वह पश्चिमी यूरोपीय समाजवादियों के क्रदमों का अनुसरण नहीं कर रहा, और बेशक वह "जर्मन स्वर्ण" का हवाला देने से नहीं चूका, जो आगे जाकर बोल्शेविकों के खिलाफ़ सबसे अधिक प्रयोग में आनेवाला दोषारोपण बन गया। जी भर गालियों की बौछार करने के बाद स्वेत ने लिखा :

ऊँचे पद पर बैठनेवाले ये निकम्मे लोग – जो कदाचित अपना स्वर्ण न छोड़नेवाले जर्मन एजेण्टों के प्रभाव में हैं – इतने प्रत्यक्ष रूप से जर्मनी के हाथों की कठपुतली बने हुए हैं कि उनकी तरफ़ से कोई निर्दोष भूल हो जाये इसका सवाल ही नहीं उठता जबकि वे समाजवाद की घातक सीख के अनुरूप काम कर रहे हों। समाजवादी दूसरे देशों में भी मौजूद हैं, लेकिन हर जगह, इंग्लैण्ड, फ़्रांस, और बेल्जियम में, जैसे ही युद्ध की घोषणा हुई, उन्होंने देश के भीतर अपने संघर्षों को त्याग दिया और भयंकर शत्रु, जर्मन सैन्यवाद के खिलाफ़ राष्ट्रीय क्रतारों में शामिल हो गये।

यहाँ तक कि जर्मन समाजवादियों ने भी युद्ध की अवधि तक अपने हवाई सपनों (यूटोपिया) का परित्याग कर दिया और अपने बुर्जुआ मित्रों के समान आचरण कर रहे हैं। ये केवल माननीय दूमा के समाजवादी ही हैं जो रूसी मज़दूरों को बुराई के खिलाफ़ अप्रतिरोध, किसी भी क्रीम पर शान्ति आदि सिद्धान्तों पर आचरण करने की सलाह देते हैं और सिर्फ़ रूसी समाजवादी ही ऐसे हैं जो युद्ध के समय आन्तरिक उपद्रव भड़काने की कोशिश करते हैं।

समाचार पत्र ने यह माँग की, "सामने आ चुकी साज़िश के नेताओं को, जिन्होंने विश्वासघात की अपनी कार्रवाइयों को अंजाम देने के लिए

संसदीय छूट की आड़ लेने की धृष्टता की, कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाये।"

सरकार और ब्लैक हण्ड्रेड को दो सालों तक बोल्शेविक धड़े की सक्रियता को बर्दाश्त करने के लिए बाध्य होना पड़ा था। हालाँकि उसके उद्देश्य को वे बहुत अच्छी तरह समझते थे परन्तु क्रान्तिकारी विस्फोट होने की आशंका के चलते वे कार्रवाई करने से डर रहे थे। अब जब कि वे छलांग लगा ही चुके थे उन्होंने ठान लिया कि हमें खत्म कर डालेंगे। पार्टी का कार्यभार था मज़दूर वर्ग को आन्दोलित करना और यह जता देना कि कोई भी सज़ा, चाहे वह कितनी भी सख्त क्यों न हो मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को रोक नहीं सकती और देर सबेर मज़दूरों को अपने दुश्मनों का सामना बैरिकेडों पर करना होगा।

हमारे पार्टी संगठन मुक़दमे के लिए ज़ोर-शोर से तैयारी कर रहे थे। पुलिस की सख्त निगरानी और पार्टी क्रतारों में तमाम कमियों के बावजूद, सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी ने मुक़दमे से सम्बन्धित कई पर्चे जारी किये, एक नमूना निम्नलिखित है :

पिछले दो वर्षों की घटनाएँ याद करें। दूमा में मज़दूरों के हितों की रक्षा किसने की थी? अधिकारियों के गैरक्रान्ती कार्यों से सम्बन्धित सवालों से किसने मंत्रियों को सबसे अधिक परेशानी में डाला था? फ़ैक्टरी में हुए विस्फोटों आदि में जाँच की माँग किसने की थी? अत्याचार के शिकार बने साथियों के लिए किसने सहयोग संगठित किया? किसने प्राव्दा और प्रोलेतरस्काया प्राव्दा का प्रकाशन किया? युद्ध में लाखों लोगों के क्रत्ल और अंगभंग के खिलाफ़ किसने प्रतिरोध किया? इन सवालों का एक ही जवाब है – मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने। उन्हें अपनी सक्रियता की खातिर कड़े परिश्रम के लिए भेज दिया जायेगा। मज़दूरों का काम इन मज़दूर प्रतिनिधियों को बचाना है। उदारवादी सरकारी सुख का मज़ा ले रहे हैं। त्रुदोविक और च्खेदजे धड़ा मानो अचानक गुँगा और बहरा हो गया है....

तब मज़दूर प्रतिनिधियों का बचाव कौन कर सकता है? केवल वही लोग जिन्होंने उन्हें चुना और समर्थन दिया है। केवल सर्वहारा ही यह साबित कर सकता है कि यह मुक़दमा उनके लिए एक अहम मसला है और वे इसे चुपचाप और उतनी आसानी से नहीं गुज़रने देंगे जैसाकि मंत्री, उदारवादी और सीक्रेट पुलिस चाहती है।

इस घोषणा के प्रकाशित होने के पूर्व जनवरी 9 (22) की वार्षिकी पर कुछ पर्चे जारी किये गये थे, जिसमें धड़े पर मुक़दमे के खिलाफ़ प्रतिरोध का नारा लिखा हुआ था – "मज़दूर वर्ग अपने प्रतिनिधियों के इस घृणित अपमान के खिलाफ़ प्रतिरोध करें। उस दिन काम बन्द रखनेवाले अपनी क्रतारों के साथ चलने में अपनी पूरी ताक़त लगा दें...."

गुप्त पुलिस ने मुक़दमे की तैयारी के लिए जुझारू मज़दूरों की और गिरफ़्तारियाँ कीं। लेकिन पार्टी कमेटी ने फ़ैक्टरियों और कार्यस्थलों पर सघन आन्दोलन संचालित किया। मुक़दमे के एक दिन पहले सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी ने हड़तालों और प्रदर्शनों का आह्वान करते हुए एक और घोषणा जारी की :

साथियो! कठघरे में मज़दूर वर्ग है, जिसकी नुमाइन्दगी वे प्रतिनिधि करते हैं, जिन्हें मज़दूरों ने चुना है और जिन्होंने मज़दूरों के साथ पूर्ण सहमति में काम किया है.... बन्दूकों की गड़गड़ाहट और तलवारों की खनखनाहट के साये तले सरकार मज़दूर वर्ग के एक और धड़े को जिन्दा दफ़न कर देने का इरादा रखती है।

मज़दूर साथियो! आइए हम दुश्मन के आकलन को ग़लत साबित कर दें, इस संकट की घड़ी में, जब हमारे प्रतिनिधियों को कड़े परिश्रम की धमकी दी जा रही हो, आइए यह साबित कर दें कि हम उनके साथ हैं। आइए उनके साथ अपनी एकजुटता की घोषणा करें और यह दिखा दें कि हम अपने चुने हुए प्रतिनिधियों को बचाने के संघर्ष के लिए तत्पर हैं।

मज़दूर साथियो! 10 फ़रवरी को हड़ताल में उतर पड़ो, सभाएँ और

प्रदर्शन आयोजित करो, मज़दूर वर्ग के खिलाफ़ ज़ारशाही तिरस्कार का प्रतिरोध करो....

यूनाइटेड स्टूडेंट्स कमेटी के उसी दिन जारी होनेवाले पर्चे में, "सर्वहारा के प्रतिरोध को सभाओं, हड़तालों और प्रदर्शनों के ज़रिये समर्थन देने के वास्ते" क्रान्तिकारी छात्रों का आह्वान किया गया था।

सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी की ये घोषणाएँ मज़दूरों के बीच प्रचारित कर दी गयीं, जिसने उनकी क्रान्तिकारी भावना को भड़का दिया और जो गुप्त पुलिस की खासी चिन्ता का कारण बना। सैनिक क्रान्ति के तहत व्यापक शक्तियों से लैस पुलिस ने मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी भावना के किसी विस्तार को रोकने के लिए सुरक्षात्मक उपाय किये। मुक़दमे के दिन सभी मुख्य फ़ैक्टरियों और कार्यस्थलों पर भारी तादाद में पुलिस तैनात थी और अदालत के चारों ओर सड़कों पर पुलिस की टुकड़ियाँ ग़त लगा रही थीं।

इन एहतियाती उपायों से दबा दिये जाने के कारण हड़ताल बहुत व्यापक शक्ति अख्तियार नहीं कर सकी, लेकिन जगह-जगह कई हड़तालें हुईं और मज़दूरों ने अदालत तक जुलूस निकालने के कई प्रयास किये। छात्रों ने कई सारी सभाएँ कीं और प्रतिरोध के प्रस्ताव पारित किये। पुलिस के भयंकर दमन के माहौल में, जबकि मज़दूर दबे आक्रोश से उबल रहे थे, दूमा के बोल्शेविक धड़े का मुक़दमा शुरू हुआ।

मज़दूर प्रतिनिधियों के मुक़दमे में उदार बुर्जुआ वर्ग की चुप्पी ने उनके सन्तोष को उजागर कर दिया था। मुक़दमे के ठीक पहले कैडेटों ने अपनी पार्टी के किसी भी सदस्य को बतौर बचाव वकील काम करने से मना कर दिया और अपना निर्णय युद्ध के बारे में हमारे विचारों के साथ अपनी असहमति पर आधारित किया। कैडेटों ने सख्त सज़ा के उस फ़ैसले पर पहले ही मुहर लगा दी थी जिसे ज़ारशाही की सरकार ने तैयार किया था।



## सरकार का समर्थक

## • सिगफ्रीड लेंज़

उन लोगों ने खास निमंत्रण देकर प्रेस वालों को बुलवाया था कि वे आकर खुद अपनी आँखों से देखें, हुकूमत के प्रति जनता का समर्थन कितना ज़बर्दस्त है। शायद वे हमें यकीन दिलाना चाहते थे कि उस सरकार की ज्यादतियों के बारे में जो कुछ लिखा जा रहा था, वह सब झूठ था, वहाँ किसी को भी 'टॉचर' नहीं किया जा रहा था, घेराबन्दी पूरी तरह हट चुकी थी और प्रदेश के किसी भी हिस्से में आतंकी या आज़ादी की लड़ाई जैसा कोई अभियान बाक़ी नहीं बचा था।

निमंत्रण के मुताबिक़ हमें शहर की ऑपेरा बिल्डिंग के सामने इकट्ठा होना था। वहाँ एक मीठी ज़बान वाले अधिकारी ने हमारी अगवानी की और वह हमें सरकारी बस की ओर ले चला। बस के भीतर हल्का संगीत बज रहा था। बस चली तो उस अधिकारी ने क्लिप पर लगा माइक्रोफ़ोन निकाला और विनम्रता से फिर हम लोगों का स्वागत किया। "मेरा नाम गारेक है!" उसने कुछ संकोच से कहा, "इस यात्रा पर मैं आपका मार्गदर्शक हूँ।" कुछ आगे चलकर उसने हाथ के इशारे से वह जगह दिखायी जहाँ सरकार की एक आदर्श हाउज़िंग कॉलोनी की नींव रखी जाने वाली थी। शहर से बाहर निकलकर हमने सूखी नदी पर बने एक पुल को पार किया जहाँ एक नौजवान सिपाही हाथ में हल्की मशीनगन थामे लापरवाही से खड़ा था। हमें देखकर उसने गर्मजोशी से अपना हाथ हवा में हिलाया। गारेक ने बताया कि इस इलाक़े में निशानेबाजी की ट्रेनिंग दी जाती है।

ट्रेने-ट्रेने रास्तों पर ऊपर चढ़ते हुए हम एक गर्म और ख़ुरक मैदान में निकल आये। खिड़की से छनकर आती खड़िया जैसी महीन धूल से हमारी आँखें जलने लगी थीं। गर्मी से हमने अपने कोट उतार दिये, लेकिन गारेक ने अपना कोट पहने रखा। माइक्रोफ़ोन हाथ में पकड़े वह उन बेजान, बंजर मैदानों में पैदावार बढ़ाने की सरकारी योजनाओं के बारे में बता रहा था। मेरी बगल में बैठे शख्स ने कुछ ऊब में अपना सिर पीछे टिकाकर अपनी आँखें बंद कर ली थीं। मैंने उसे कुहनी मारकर उठा देने की सोची क्योंकि गाड़ी के 'रियर व्यू' शीशे में से दिखायी देती गारेक की आँखें रह-रहकर हम दोनों पर ठहर जाती थीं। तभी गारेक अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और मुस्कराहटभरा चेहरा लिये सीटों के पतले गलियारे से होता हुआ सब अतिथियों को पुआल की बनी टोपियाँ और कोल्ड ड्रिंक की ठण्डी बोतलें बाँटने लगा।

कुछ आगे हम एक गाँव से गुजरे। यहाँ सभी खिड़कियाँ लकड़ी की पेटियों से तोड़े गये तख्तों पर कीलें ठोककर बन्द कर दी गयी थीं। टहनियों से बनी मेंड़ें जगह-जगह आंधी से टूट चुकी थीं और साबुत-सलामत हिस्सों में जगह-जगह सूरख थे। सपाट छतें वीरान थीं और कहीं भी कपड़े नहीं सूख रहे थे। कुआँ पतरे से ढंका हुआ था और

ताज्जुब की बात है कि हमारे पीछे कहीं भी न तो कुत्ते ही भौंके और न ही कोई शख्स वहाँ नजर आया। बिना रफ़्तार कम किये हमारी बस जन्नाटे के साथ आगे निकल गयी।

गारेक इस बीच फिर से सबको सैंडविच के पैकेट बाँटने लगा था। बस के भीतर की गर्मी के एवज में उसने हमें तसल्ली भी दी कि अब आगे का सफ़र बहुत लम्बा नहीं है। सड़क आगे नदी के कटाव से बनी घाटी के सिरे पर बसे एक छोटे-से गाँव के करीब आ पहुँची।

गारेक ने हाथ से इशारा किया कि यहीं हमें उतरना है। अब हम सफ़ेदी पुती एक साफ़-सुथरी झोंपड़ी के सामने कच्चे चौक में खड़े थे। उस झोंपड़ी की सफ़ेदी इस क्रूर चमकदार थी कि बस से उतरते हुए वह हमें अपनी आँखों में चुभती हुई सी लगी। एक नजर झोंपड़ी पर डालकर हम गारेक के लौटने का इन्तज़ार करने लगे, जो बस से उतरने के बाद झोंपड़ी के भीतर ग़ायब हो गया था।

गारेक को लौटने में कुछ मिनट लगे। जब वह बाहर आया तो उसके साथ एक और शख्स था, जिसे हमने इससे पहले कभी नहीं देखा था।

"ये मिस्टर बेला बॉजो हैं!" गारेक ने उस आदमी की ओर इशारा करते हुए कहा, "ये अपने घर में कुछ काम कर रहे थे, लेकिन फिर भी आप इनसे जो सवाल चाहें पूछ सकते हैं।"

हम सब बड़े ध्यान से बॉजो की ओर देखने लगे। हमारी तलाशती हुई निगाहों को झेलते हुए उसका सिर कुछ झुक-सा गया। उसके बड़े चेहरे और गर्दन पर गहरी स्याह रेखाएँ थीं। हमने गौर किया कि उसका ऊपरी होंठ कुछ सूजा हुआ था। उसे घर के किसी काम के बीच अचानक हड़बड़ा दिया गया था और जल्दी-जल्दी अपने बालों में कंधी फिरा चुकने के बाद अब वह हमारे सामने प्रस्तुत था। उसकी गर्दन पर बने उस्तरे के ताज़े निशान बता रहे थे कि उसने जल्दबाजी में किसी खुरदुरे ब्लेड से दाढ़ी बनायी है। ताज़ा सूती क्रमीज़ के नीचे उसने किसी और के नाप वाली बेढंगी पतलून पहन रखी थी जो बमुश्किल उसके घुटनों तक आती थी। पैरों में कच्चे बदरंग चमड़े के नये जूते थे, जैसे रंगरूटों को ट्रेनिंग के दौरान मिलते हैं।

हम सबने 'हेलो!' कहते हुए बारी-बारी से उससे हाथ मिलाया। वह सिर हिलाता रहा और फिर उसने हमें घर के भीतर आने का न्यौता दिया। भीतर एक बड़े से कमरे में एक बूढ़ी औरत जैसे हमारा इन्तज़ार कर रही थी। कमरे की मरियल रोशनी में हमें उसके चेहरे की जगह सिर्फ़ उसका शाल दिखायी दिया।

आगे बढ़कर उसने अपनी मुट्टियों के आकार का एक अजीब सा फल खाने को दिया जिसका गूदा इस क्रूर सुर्ख लाल था कि हमें लगा, हम किसी ताज़े ज़ख़्म पर अपने दाँत गड़ा रहे हैं।

कमरे से निकलकर हम वापस चौक में आये तो बहुत-से अधनंगे बच्चे हमारी बस के गिर्द इकट्ठे हो गये थे। वे सब अपनी जगह से हिले-डुले बग़ैर बहुत गौर से बॉजो की ओर देख रहे थे। एक अजीब संतोशभरी साँस खींचकर बॉजो उनकी ओर देखते हुए मुस्कराया।

"तुम्हारे बच्चे हैं?" हमारे एक साथी ने रुककर पूछा तो बॉजो ने कहा, "हाँ,



एक बेटा है। लेकिन उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। वह सरकार विरोधी था और साथ ही आलसी और निकम्मा भी। पैसों की खातिर उसने बागी क्रान्तिकारियों का साथ दिया, जो इन दिनों हर जगह गड़बड़ी फैला रहे हैं। वे समझते हैं कि सरकार के मुकाबले वे बेहतर ढंग से इस देश को चला सकते हैं।" उसकी आवाज़ में गहरा आत्मविश्वास और विश्वसनीयता थी। मैंने गौर किया कि उसके सामने के दाँत नहीं हैं।

"लेकिन उनका यह दावा सही भी तो हो सकता है!" हममें से एक ने उसके प्रतिवाद में कहा।

इस पर गारेक, जो सबकुछ सुन रहा था, कुछ विनोद-भाव से मुस्कराया। लेकिन बॉजो ने बहुत सधी हुई आवाज़ में कहा, "सरकार का बोझ, चाहे वह हल्का हो या भारी, आखिरकार जनता को ही उठाना होता है।"

बच्चों ने अर्थपूर्ण ढंग से एक-दूसरे की ओर देखा।

"फ़क़त आज़ादी को लेकर आप क्या चाटिएगा!" बॉजो ने मुस्कराकर कहा, "ऐसी आज़ादी किस काम की जिससे पूरा देश ग़रीबी की चपेट में आ जाये।"

बच्चों में एक लहर-सी दौड़ गयी। बॉजो ने अपनी गर्दन झुकायी और दुबारा कुछ अजीब-से भाव से मुस्कराया। गारेक कुछ फ़ासले पर खड़ा चुपचाप सब सुन रहा था।

गारेक मुड़कर बस की ओर चला गया। बॉजो बहुत सावधानी से उसकी ओर देख रहा था। जैसे ही बस का भारी दरवाज़ा बन्द हुआ और हम अकेले

रह गये तो मेरे साथी रिपोर्टर ने इसका फ़ायदा उठाकर जल्दी से सवाल किया, "अब असली माजरा बताओ! अब हम अकेले हैं!"

बॉजो ने थूक निगली और कुछ आश्चर्य से बोला, "माफ़ कीजिए, मैं समझा नहीं आपका सवाल..."

"अब हम खुलकर बात कर सकते हैं!" रिपोर्टर ने कुछ हड़बड़ाते हुए कहा।

"खुलकर बात कर सकते हैं!" बॉजो ने काफ़ी सावधानी के साथ सवाल को दोहराया और फिर उसके चेहरे पर हँसी फैल गयी। उसके सामने के दाँतों की खाली जगह अब बखूबी देखी जा सकती थी।

"मैं आपसे खुलकर ही बता रहा था। मैं और मेरी पत्नी, हम दोनों इस हुकूमत के तरफ़दार हैं। हमें जो कुछ अब तक मिला है उसमें सरकार का बड़ा हाथ रहा है। मैं ही नहीं, मेरे पड़ोसी और सामने खड़े ये सारे बच्चे और इस गाँव का एक-एक आदमी, हम सब इस हुकूमत के वफ़ादार

हैं। आप यहाँ किसी भी घर का दरवाज़ा खटखटा लें, वहाँ आपको सरकार के समर्थक ही मिलेंगे।"

इस पर एक दुबला-पतला नौजवान पत्रकार अचानक आगे निकल आया। बॉजो के नज़दीक आकर उसने फुसफुसाहटभरे स्वर में सवाल किया, "मुझे जानकारी है कि तुम्हारा बेटा पकड़ लिया गया है और शहर के क़ैदखाने में उसे यातना दी जा रही है। इस पर तुम्हारा क्या कहना है?"

बॉजो ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसकी पलकों पर अब धूल की मटमैली सफ़ेदी थी। "जब वह मेरा बेटा ही नहीं है तब उसे 'टॉचर' कैसे किया जा सकता है? मैं आपसे फिर कहता हूँ कि मैं इस हुकूमत का वफ़ादार और उनका दोस्त हूँ।"

उसने एक मुड़ी-तुड़ी हाथ से बनायी बीड़ी सुलगा ली और तेज़ी से उसके कश खींचते हुए बस के दरवाज़े की ओर देखने लगा, जो अब तक खुल चुका था। गारेक बस से उतरकर हमारी ओर आया और हल्केपन से पूछने लगा, सब कैसा चल रहा है। बॉजो के चेहरे से लगा कि गारेक की वापसी से उसकी बेचैनी काफ़ी कम हो गयी है। वह बहुत सहजता से हमारे सभी सवालों का जवाब देता रहा। बीच-बीच में वह अपने दाँतों की खाली जगह से बीड़ी का धुआँ छोड़कर निःश्वास लेता।

फावड़ा लिये एक आदमी उधर से गुजरा तो बॉजो ने हाथ के इशारे से उसे अपने पास बुला लिया। फिर बॉजो ने उससे वे सारे सवाल किये जो हमने उससे पूछे थे। उस आदमी ने कुछ नाराज़गी से अपना सिर हिलाया। जी

नहीं, वह जी जान से सरकार का समर्थक था। उसके बयान को बॉजो विजय-भाव से सुनता रहा, गोया कि हुकूमत के साथ अपने साज़ा रिश्ते पर वे विश्वसनीयता की मुहर लगा रहे हों।

चलने से पहले हम सब बारी-बारी से बॉजो से हाथ मिलाने लगे। मेरा नम्बर आखिरी था। जब मैंने उसके सख्त, खुरदुरे हाथ को अपनी उंगलियों से दबाया तो अचानक हथेली पर काग़ज़ की एक गोली का दबाव महसूस हुआ। फुर्ती से उंगलियाँ मोड़ते हुए मैंने उसे वापस खींचा और जब हम बस की ओर मुड़े तो मैंने चुपचाप उस गोली को जेब में डाल लिया। बीड़ी के सुट्टे लगाता हुआ बॉजो उसी तरह नीचे चौक में खड़ा था। जब बस चलने को हुई तो उसने अपनी पत्नी को भी बाहर बुला लिया और वे दोनों उस फावड़े वाले आदमी और उन बच्चों के साथ खड़े पीछे घूमती बस की ओर अविचलित भाव से देखते रहे।

हम उसी रास्ते से लौटने की जगह उसी रास्ते पर आगे बढ़ते गये। इस पूरी यात्रा के दौरान मेरा हाथ अपने कोट की जेब में घुसा हुआ था और मेरी उंगलियों के बीच थी काग़ज़ की वह गोली, जो इतनी सख्त थी कि उसे नाखून से दबाना भी मुश्किल था। उसे जेब से बाहर निकालना ख़तरे से ख़ाली नहीं था क्योंकि गारेक की पैनी आँखें 'रियर व्यू' के शीशे से होती हुई बार-बार हम पर आकर ठहर जाती थीं।

काग़ज़ की उस गोली को अपने हाथ में दबाते हुए मुझे बॉजो का खयाल आया। एक हाथगाड़ी पास से गुजरी तो उसपर बैठे सिपाहियों ने मशीनगन हवा में हिलाते हुए हमारा स्वागत किया। मौक़ा पाकर मैंने काग़ज़ की उस गोली को चोर जेब में छिपाकर ऊपर से बटन बन्द कर दिया। इसके साथ ही मुझे दुबारा हुकूमत के दोस्त बॉजो का चेहरा याद हो आया। मैंने अपनी आँखों के सामने उसके कच्चे चमड़े के जूतों, उसके चेहरे की मुस्कराहट और बोलते समय नजर आती उसके दाँतों के बीच की खाली जगह को देखा। हममें से किसी को भी शक नहीं था कि बॉजो के रूप में सरकार को एक सच्चा समर्थक मिल गया था।

समुद्र किनारे से होते हुए हम वापस शहर लौट आये। ऑपेरा हाउस पर बस से उतरे तो गारेक ने शिष्टतापूर्वक हम सबसे विदा ली। मैं हॉटेल तक अकेला लौटा और कमरे का दरवाज़ा बन्द करने के बाद मैंने बाथरूम में सरकार के उस समर्थक द्वारा ख़ुफ़िया तौर पर थमायी गयी काग़ज़ की उस गोली को सावधानी से खोला। लेकिन पूरा काग़ज़ खाली था, न उस पर कोई शब्द लिखा था और न ही वहाँ कोई निशान बना था। और तब मैंने देखा कि उसी काग़ज़ में लिपटा हुआ था कथई रंग का एक टूटा हुआ दाँत, जिसपर बने तम्बाकू के दाग़ को देखते हुए अन्दाज़ लगाना मुश्किल नहीं था कि यह दाँत किसका हो सकता है!

हिन्दी रूपान्तर : जितेन्द्र भाटिया



## बढ़ता हुआ प्रदूषण और घुटती हुई आबादी

— डॉ. नवमीत

दीवाली के अगले दिन से ही भारत के तमाम शहरों में वायु प्रदूषण का स्तर बहुत ज्यादा हो गया है। हर जगह लोगों को प्रदूषण की वजह से साँस लेने में और रोजमर्रा के काम करने में कठिनाई हो रही है। लेकिन यह सिर्फ दीवाली या भारत की बात नहीं है, बल्कि पूरी दुनिया की बात है। हालाँकि दुनिया के सबसे ज्यादा प्रदूषित 10 शहरों में से 7 भारत में हैं लेकिन फिर भी यह पूरी दुनिया की समस्या है।

2012 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक रिपोर्ट पेश की थी। इस रिपोर्ट के अनुसार हर साल लगभग सत्तर लाख लोग वायु प्रदूषण के कारण मर जाते हैं। यह पूरी दुनिया में होने वाली मौतों का आठवाँ हिस्सा है। तो इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है कि वायु प्रदूषण इन्सान के लिए सबसे बड़ा वातावरणीय खतरा है। अगर हम वायु प्रदूषण को कम कर लें या नियंत्रित कर लें तो हम हर साल लाखों जिन्दगियों को बचा सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 15 साल से कम आयु के 93% बच्चे ऐसी हवा में साँस लेते हैं जो उनके स्वास्थ्य और विकास के लिए गम्भीर खतरा बना रहता है। इसी रिपोर्ट के अनुसार 2016 में प्रदूषण की वजह से होने वाले श्वास संक्रमणों से इसी आयु वर्ग के छह लाख बच्चों की मौत हो गयी थी। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विकासशील देशों

के बच्चों पर घर के अन्दर और बाहर के वायु प्रदूषण से होने वाले प्रभावों पर एक अन्य रिपोर्ट पेश की थी। इस रिपोर्ट के अनुसार अगर कोई गर्भवती महिला प्रदूषित हवा में साँस लेती है तो उनके बच्चों के समय से पहले पैदा होने की सम्भावना अधिक होती है, और बच्चे का वजन सामान्य से कम होता है। जन्म के समय बच्चे का सामान्य से कम वजन शैशव काल में होने वाली मौतों के सबसे बड़े कारणों में से एक होता है। इसके अलावा प्रदूषित हवा में साँस लेने वाले बच्चों का दिमागी विकास बाधित रहता है और यहाँ तक कि कैंसर का कारण भी बन सकता है। ऐसे बच्चों में बड़ा होने के बाद भी गम्भीर बीमारियाँ, जैसे हृदय रोग, होने की सम्भावना भी ज्यादा हो जाती है। इससे बच्चों के फेफड़ों की क्षमता भी प्रभावित होती है।

एक अध्ययन के अनुसार विकासशील देशों के 98 प्रतिशत बच्चे विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तय मानकों से कहीं अधिक खराब हवा में साँस लेते हैं जबकि विकसित देशों में यह आँकड़ा 52 प्रतिशत का है। बच्चों के लिए वायु प्रदूषण ज्यादा घातक इसलिए होता है क्योंकि एक तो बच्चे क्रद छोटा होने की वजह से ज़मीन के नज़दीक होते हैं। ज़मीन के नज़दीक की वायु में वायु प्रदूषकों का संकेन्द्रण अधिक होता है। दूसरा यह कि बच्चे बड़ों की अपेक्षा ज्यादा गति से साँस लेते हैं, जिसकी वजह से उनके शरीर में कम समय में

ज्यादा प्रदूषक चले जाते हैं। तीसरा यह कि बच्चों का रोग-प्रतिरोधक तंत्र भी इतने प्रदूषण को झेल नहीं पाता। कम आयु वर्ग वाले देशों के बच्चे तो वैसे ही कुपोषित होते हैं। इन सब कारणों का बच्चों के स्वास्थ्य और जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सिर्फ बच्चों पर ही नहीं बल्कि हर आयु वर्ग के लोगों के लिए प्रदूषण हानिकारक है। श्वास तंत्र के रोग, हृदय रोग, थकान, सरदर्द, बेचैनी, आँखों, नाक, कान और गले के रोग, प्रजनन तंत्र के रोग, लीवर व तिल्ली के रोग, रक्त सम्बन्धी विकार और तंत्रिका तंत्र के रोग। यानि कुल मिलाकर पूरे शरीर पर प्रदूषण के गम्भीर प्रभाव पड़ते हैं।

अब पड़ताल करते हैं इसके कारणों की। कुछ समय पहले दुनियाभर के पचास वैज्ञानिकों की एक टीम ने 24 देशों के 650 शहरों पर एक अध्ययन किया था और इस अध्ययन को “न्यू इंग्लैण्ड जर्नल ऑफ़ मेडिसिन” नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका में छपवाया था। इस शोध के अनुसार यातायात के विभिन्न साधनों से, जीवाश्म ईंधन के जलने से, उद्योगों से, जंगलों की आग से पैदा होने वाला धुआँ और रेडिएशन प्रदूषण के सबसे बड़े कारण हैं। और इन कारणों के कारण क्या हैं? पूँजीवाद के भोंपू अक्सर इसका कारण बढ़ती हुई आबादी को बताते हैं। कुछ लिबरल तबके के लोग इसका कारण प्रौद्योगिकी के विकास को बताते हैं और वापस

पाषाण युग में जाने की सलाह देते हैं। इनका कहना है कि मानवजाति विनाश की तरफ बढ़ रही है और अगर विनाश से बचना है तो आबादी को कम करना होगा और प्रौद्योगिकी के विकास को रोकना होगा। लेकिन क्या यह सही तर्क है? नहीं। यह ग़लत तर्क है। प्रदूषण के बढ़ने और अनियंत्रित होने का कारण प्रौद्योगिकी का विकास या बढ़ती हुई आबादी नहीं है, बल्कि मुनाफ़े पर टिकी हुई पूँजीवादी व्यवस्था है। इस व्यवस्था में कोई भी उत्पादन या निर्माण आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि मुनाफ़े के लिए होता है। यहाँ तक कि खाद्य पदार्थों का उत्पादन भी। तो ज़ाहिर है, इसके प्रदूषण के लिए जिम्मेदार भी मुनाफ़े पर आधारित व्यवस्था है, न कि आबादी। और प्रदूषण को सबसे ज्यादा झेलने वाली मेहनतकश आबादी तो क्रतई नहीं। इसके लिए प्रौद्योगिकी जिम्मेदार नहीं है। प्रौद्योगिकी का काम होता है मनुष्य के काम को आसान करना, मानवजाति की सेवा करना। लेकिन असल में प्रौद्योगिकी से काम क्या लिया जा रहा है? हाँ, आप सही समझे हैं। प्रौद्योगिकी की मदद से सिर्फ़ और सिर्फ़ मुनाफ़ा बनाने का काम लिया जा रहा है। वरना प्रौद्योगिकी तो इतनी क्राबिल है कि प्रदूषण को नियंत्रित भी कर सकती है। फिर आप पूछेंगे कि अगर यह सक्षम है तो ऐसा कर क्यों नहीं रही है? सही सवाल है। जवाब का अनुमान भी आपने सही लगाया है —

मुनाफ़ा। प्रदूषण को कम करने में किसी तरह के मुनाफ़े की गुंजाइश नहीं होती। इसलिए पूँजीपति वर्ग इसके लिए पैसा लगाने को तैयार ही नहीं है। उसे तो यँ ही हानिकारक गैसों और धुएँ का उत्पादन करते रहना है। अपना काम बनता, भाड़ में जाये जनता। न पूँजीपति वर्ग और न ही पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी रूपी सरकारें इस दिशा में कोई क्रदम उठाने वाली हैं। त्योहारों के पटाखे भी मुनाफ़े से जुड़े हुए हैं। कुल मिलाकर यह व्यवस्था वाक्रई में मानवजाति को विनाश की तरफ धकेल रही है। इसका समय रहते समाधान करना ज़रूरी है।

लेकिन सवाल यही है कि इस समस्या का समाधान क्या हो? समाधान एक ही है। मुनाफ़े पर टिकी हुई इस व्यवस्था यानि पूँजीवाद का ख़ात्मा। समाजवाद की स्थापना, जिसमें राजकाज और उत्पादन के तमाम साधनों पर मेहनतकश मज़दूर वर्ग का अधिकार हो। तब उत्पादन मुनाफ़े के लिए नहीं बल्कि जनता की ज़रूरतों के हिसाब से होगा। प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल मुनाफ़े के लिए नहीं बल्कि मानवजाति की ज़रूरतों के लिए किया जायेगा। केवल तभी मानवजाति को विनाश से बचाया जा सकता है। लेकिन यह भी जल्दी करना होगा। जिस दर से वातावरण का प्रदूषण और इसके दुष्प्रभाव बढ़ते जा रहे हैं, लगता नहीं है कि पूँजीवाद मानवता को बहुत समय देने वाला है।

## मज़दूर-विरोधी नीतियों को धड़ल्ले से लागू करने में जुटी मोदी सरकार का पूँजीपतियों को नया तोहफ़ा !

**औद्योगिक सम्बन्ध श्रम संहिता को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की मंजूरी ! फिक्स्ड टर्म एम्प्लॉयमेंट के नाम पर ठेकेदारी प्रथा को क़ानूनी मान्यता !**

श्रम क़ानूनों पर मोदी सरकार के हमले जारी हैं। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने 20 नवम्बर को औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता (लेबर कोड ऑन इण्डस्ट्रियल रिलेशन्स) को मंजूरी दे दी है जिससे अब कम्पनियों को मज़दूरों को किसी भी अवधि के लिए ठेके पर नियुक्त करने का अधिकार मिल गया है। इसे फिक्स्ड टर्म एम्प्लॉयमेंट का नाम दिया गया है। मतलब साफ़ है कि अब ठेका प्रथा को पूरी तरह से क़ानूनी जामा पहनाने की तैयारी हो चुकी है, यानी कि अब पूँजीपति मज़दूरों को क़ानूनी तरीके से 3 महीने, 6 महीने या सालभर के लिए ठेके पर रख सकता है और फिर उसके बाद उसे काम से बाहर निकाल सकता है।

सरकार ने तीन पुराने श्रम क़ानूनों— औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926 और औद्योगिक रोजगार अधिनियम 1946 को हटाकर उनकी जगह औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता 2019 लागू किया है। प्रधानमंत्री मोदी का कहना है कि औद्योगिक विवाद सही शब्द नहीं है क्योंकि मज़दूरों और पूँजीपतियों के बीच तो कोई विवाद वास्तव में है ही नहीं! उनके बीच दोस्ताना सम्बन्ध है जहाँ पूँजीपति मज़दूरों के अभिभावक के समान हैं और उनकी हर फ़िक्र को अपना समझते हैं! इसी से साफ़ है कि

अपने पूँजीपति-आक्राओं को खुश करने में प्रधानमंत्री कितने तल्लीन हैं। वैसे भी सच को झूठ और झूठ को सच कहना फ़ासीवादियों की पुरानी आदत है।

यहाँ बताने की ज़रूरत नहीं है कि क्रागज़ पर मौजूद श्रम क़ानून पहले ही इतने लचीले और निष्प्रभावी थे कि आम तौर पर इनका फ़ायदा मज़दूरों को कम, मालिकों को ही ज्यादा मिलता था। लेकिन फिर भी ये क़ानून पूँजीपतियों के लिए कभी-कभार सरदर्दी का सबब बन जाते थे, खासकर जब मज़दूर इन्हें लागू कराने के लिए संघर्ष छेड़ देते थे। नरेन्द्र मोदी ने सत्ता में आते “कारोबार की आसानी” के नाम पर पूँजीपतियों को मज़दूरों की श्रम-शक्ति लूटने की खुली छूट देने का ऐलान कर दिया था। यही कारण है कि वर्षों के वर्ग संघर्ष के बल पर मज़दूरों ने जो भी अधिकार श्रम क़ानूनों के रूप में हासिल किये थे उसे फ़ासीवादी मोदी सरकार पूरी तरह से छीन लेना चाहती है ताकि मन्दी की मार से पूँजीपतियों के मुनाफ़े में जो भी रोड़ा है उसे हटाकर पूँजीपतियों को मज़दूरों की हड्डी-हड्डी निचोड़ लेने की छूट दी जा सके।

चुनाव में हज़ारों करोड़ का खर्च उठा कर अम्बानी-अडानी आदि ने मोदी को दोबारा सत्ता में इसीलिए पहुँचाया है ताकि जनता को झूठे मुहों पर बाँटकर पूँजीपतियों के मुनाफ़े के रास्ते

में आने वाले हर स्पीडब्रेकर को पूरी तरह से हटाया जा सके। इसलिए वर्षों से जनता के पैसे पर खड़े सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को कौड़ियों के भाव इन पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा है, सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों और चिकित्सा संस्थानों को बर्बाद किया जा रहा है ताकि पूँजीपतियों को यहाँ भी लूटने में खुला हाथ दिया जा सके। और इसके साथ ही देश में 60 करोड़ मज़दूरों-मेहनतकशों की लूट को बेहिसाब बढ़ाने, उनके यूनियन बनाने के अधिकार यानी उनके सामूहिक मोलभाव की क्षमता को कमजोर करने और उनके संघर्ष को कुचलने की तैयारी को मोदी सरकार बड़े जोर-शोर से अन्जाम दे रही है।

इसी मक़सद से 44 मौजूदा केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को खत्म कर चार संहिताएँ बनायी गयी हैं—मज़दूर पर श्रम संहिता, औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता, सामाजिक सुरक्षा पर श्रम संहिता और औद्योगिक सुरक्षा एवं कल्याण पर श्रम संहिता। इनमें से एक को आज मंत्रिमण्डल की मंजूरी भी मिल गयी। कहने के लिए तो श्रम क़ानूनों को तर्कसंगत और सरल बनाने के लिए ऐसा किया जा रहा है। लेकिन इसका एक ही मक़सद है, देशी-विदेशी कम्पनियों के लिए मज़दूरों के श्रम को सस्ती से सस्ती दरों पर और मनमानी शर्तों पर निचोड़ना आसान बनाना।

पिछली सरकार में श्रम मंत्री बंडारू दत्तात्रेय ने पहले ही यह कहकर सरकार की नीयत साफ़ कर दी थी कि “श्रम क़ानूनों का मौजूदा स्वरूप विकास में बाधा बन रहा है, इसीलिए सुधारों की आवश्यकता है।” कहने की ज़रूरत नहीं कि विकास का मतलब पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ना ही माना जाता है। मज़दूरों को बेहतर मज़दूरी मिले, उनकी नौकरी सुरक्षित हो, उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा और परिवार को सुकून की जिन्दगी मिले, इसे विकास का पैमाना नहीं माना जाता। इसलिए, विकास के लिए ज़रूरी है कि थैलीशाहों को अपनी शर्तों पर कारोबार शुरू करने, बन्द करने, लोगों को काम पर रखने, निकालने, मनचाही मज़दूरी तय करने आदि की पूरी छूट दी जाये और मज़दूरों को यूनियन बनाने, एकजुट होने जैसी “विकास-विरोधी” कार्रवाइयों से दूर रखा जाये।

यह तो महज़ ट्रेलर है, पूरी पिक्चर जल्दी ही सामने आ जायेगी। बुर्जुआ और संसदमार्गी वामपन्थी दलों से जुड़ी यूनियन मज़दूरों के अतिसीमित आर्थिक हितों की हिफ़ाज़त के लिए भी सड़क पर उतरने की हिम्मत और ताक़त दुअन्नी-चवन्नी की सौदेबाज़ी करते-करते खो चुकी है। वैसे भी देश की कुल मज़दूर आबादी में 90 फ़ीसदी से अधिक जो असंगठित मज़दूर हैं, उनमें इनकी

मौजूदगी बस दिखावे भर की ही है। अब सफ़ेद कॉलर वाले मज़दूरों, कुलीन मज़दूरों और सर्विस सेक्टर के मध्यवर्गीय कर्मचारियों के बीच ही इन यूनियनों का वास्तविक आधार बचा हुआ है और सच्चाई यह है कि नवउदारवाद की मार जब समाज के इस संस्तर पर भी पड़ रही है तो ये यूनियन इनकी माँगों को लेकर भी प्रभावी विरोध दर्ज करा पाने में अक्षम होती जा रही हैं। बहरहाल, रास्ता अब एक ही बचा है। गाँवों और शहरों की व्यापक मेहनतकश आबादी को सघन राजनीतिक कार्रवाइयों के ज़रिये, जीने के अधिकार सहित सभी जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष करने के उद्देश्य से, उनके विशिष्ट पेशों की चौहदियों से आगे बढ़कर, इलाक़ाई पैमाने पर संगठित करना होगा। साथ ही, अलग-अलग सेक्टरों की ऐसी पेशागत यूनियन संगठित करनी होगी, जिसके अन्तर्गत ठेका मज़दूर और सभी श्रेणी के अनियमित मज़दूर मुख्य ताक़त के तौर पर शामिल हों। पुराने ट्रेड यूनियन आन्दोलन के क्रान्तिकारी नवोन्मेष की सम्भावनाएँ अब अत्यधिक क्षीण हो चुकी हैं। अब एक नयी क्रान्तिकारी शुरुआत पर ही सारी आशाएँ टिकी हैं, चाहे इसका रास्ता जितना भी लम्बा और कठिन क्यों न हो।

— बिगुल डेस्क